इकाई 3 आधुनिक युग का वैचारिक आधार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि

- 3.2.1 नया आर्थिक ढाँचा
- 3.2.2 नयी शिक्षा प्रणाली
- 3.2.3 मुद्रणालयों की भूमिका
- 3.2.4 यातायात की स्थिति एवं विकास

3.3 पाश्चात्य जीवन–दृष्टियाँ

- 3.3.1 आदर्शवाद
- 3.3.2 अभिव्यंजनावाद एवं रूपवाद
- 3.3.3 अस्तित्ववाद
- 3.3.4 मनोविश्लेषणवाद एवं अतियथार्थवाद
- 3.3.5 मानवतावादी विचारधारा
- 3.3.6 मार्क्सवादी विचारधारा
- 3.3.7 समाजवाद एवं साम्यवाद
- 3.3.8 प्रतीकवाद और बिम्बवाद

3.4 थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना

3.5 भारतीय जीवन दृष्टियाँ

- 3.5.1 ब्रह्म समाज
- 3.5.2 प्रार्थना समाज
- 3.5.3 रामकृष्ण परमहंस मिशन
- 3.5.4 आर्य समाज
- 3.5.5 गांधीवादी विचारधारा
- 3.5.6 प्रगतिवाद

3.6 वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आदर्शवादी जीवन–दर्शन

3.7 सारांश

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इससे पहली इकाई में आप आधुनिक काल की परिस्थितियों का अध्ययन कर चुके हैं। यह इकाई आधुनिक युग की पृष्ठभूमि तथा युगीन विचारधाराओं की पोषक दृष्टियों एवं धारणाओं की समीक्षा करती है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप :

- सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से हो रहे वैचारिक एवं व्यावहारिक बदलावों को समझ सकेंगे/सकेंगी;

- भारत में अंग्रेजों की नई आर्थिक नीति को स्पष्ट कर सकेंगी/सकेंगे;
- नई शिक्षा प्रणाली, यातायात के बदलाव तथा मुद्रणालय की जन–जीवन में भूमिका बता सकेंगी/सकेंगे;
- पाश्चात्य विचारधाराओं के सूचक आदर्शवाद, अभिव्यंजनावाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद तथा समाजवादी आदि विविध वादों की जीवन दृष्टि को व्याख्यायित कर सकेंगी/सकेंगे;
- थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना एवं भूमिका को बता सकेंगी/सकेंगे;
- भारतीय जीवन दृष्टि के अंतर्गत ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज तथा गांधीवाद आदि के वैचारिक आधार का विवेचन कर सकेंगी/सकेंगे; और
- आधुनिक युग के वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आदर्शवादी जीवन–दर्शन को विश्लेषित कर सकेंगी/सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी शासन एक महत्वपूर्ण घटना है। भारत के सामाजिक जीवन में आधुनिक काल में जो चेतना आयी उसका कारण आंग्ल–भारतीय संपर्क है। लार्ड क्लाइव ने 1757 में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में पराजित करके सम्पूर्ण बंगाल को अधिकार में कर लिया। 1764 में अंग्रेजों ने मुगल सम्राट, आलम शाह को पराजित किया। 1826 में जाट राजा और 1849 में सिक्खों को पराजित किया एवं 1856 में अवध के नवाब वाजिद अली शाह को अपदस्थ करके अंग्रेजों ने अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। इस प्रकार संपूर्ण देश पर अंग्रेजों का नियंत्रण 1856 तक हो गया। विजय पर विजय पाने के कारण अंग्रेज स्वभावतः मदोन्मत्त हो गये और उनकी नीतियों से असन्तुष्ट होकर देशी राजाओं ने अन्तिम मुगल सम्राट बहादुशाह ज़फर के नेतृत्व में 1857 में व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पूँजीवादी और सामंतवादी शक्तियों की टकराहट हुई एवं सामंतीय शक्तियों की पराजय हुई। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को समाप्त करके भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बना लिया। इससे भारतीयों को भिन्न सभ्यता और संस्कृति का सामना करना पड़ा तथा ब्रिटिश सरकार ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों को लागू करना आरंभ कर दिया। अब भारतीयों को कुछ नया सोचने और करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

हिन्दी साहित्य ने पुरानी रूढ़ काव्य परम्पराओं से कुछ मुक्ति पाकर ऐसे क्षेत्र में प्रवेश किया जो नए जीवन की संघर्षपूर्ण हलचलों से भरा हुआ था एवं प्रथम बार वह मनुष्य के बृहत्तर सुख–दुख के साथ जुड़ा। इसे भारतेन्दु युग कहा गया। आधुनिक जीवन–चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ी बोली बनी।

किसी भी साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरुचियों एवं संवेदनाओं का इतिहास हुआ करता है। अभिरुचियों और संवेदनाओं के परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध चिन्तनात्मक और आर्थिक परिवर्तन से होता है। आधुनिक काल की वर्तमान प्रक्रिया को समझने के लिए उन समस्त कारणों का विवेचन आवश्यक है जो अंग्रेजी साम्राज्यवाद के फलस्वरूप प्रादुर्भूत हुए।

इस इकाई में आप इन सब कारणों के मूल में काम कर रही पाश्चात्य एवं जीवन दृष्टियों का विश्लेषण कर सकेंगे कि आधुनिक युग का हिंदी साहित्य इन सब विचारों से कैसे और किस रूप में ऊर्जा ग्रहण करता है। वास्तव में आधुनिक भारतीय साहित्य और विशेषतः हिंदी

साहित्य के भीतर की जो वैचारिक एवं जागरणमयी चेतना है उसका श्रेय इन्हीं सब जीवन दृष्टियों को जाता है। आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक स्तर पर जो विद्वान चिंतनरत थे तथा जो संस्थाएँ मार्ग–दर्शन के कार्य में दत्त–चित्त थीं उन सभी का विश्लेषण इस इकाई में किया जा रहा है।

इससे पहले कि इकाई में आप आधुनिक युग की प्रमुख परिस्थितियों का विवेचन कर चुके हैं। पहले आपने यह भी देखा कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ 'साहित्य–भूमि' तैयार करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस इकाई में उन परिस्थितियों से तैयार हो रही मानसिकता तथा उनकी जीवन दृष्टि को स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि विदेशी वादों एवं जीवन दृष्टियों का भी भारतीय आधुनिक युग पर अत्यंत प्रभाव रहा। इस युग की आधुनिकता और अधुनातनता को पुष्ट करने वाली उन चिन्तन धाराओं की भूमिका एवं स्वरूप को भी इसी इकाई में स्पष्ट किया गया है। आइए अब हम आधुनिक युग के वैचारिक आधार को स्पष्ट करने वाली इस इकाई में सर्वप्रथम सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से मुखरित होती वैज्ञानिक पृष्ठभूमि की समीक्षा करें।

3.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि

किसी भी बड़े या छोटे बदलाव के कुछ न कुछ कारण अवश्य होते हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य में विगत तीन कालों की तुलना में देखें तो अनेक दिशाओं में यह परिवर्तन उजागर होते हैं। आर्थिक कारण तो बुनियादी परिवर्तनों के मूल में रहते ही हैं साथ ही सांस्कृतिक–सामाजिक एवं वैचारिक धरातल पर देश–विदेश का परस्पर आदान–प्रदान भी इसका महत्वपूर्ण कारण बनता है। भारत में भी अंग्रेजों की नीति ने हमारी स्वदेशी संस्कृति को अपनी विचारधाराओं से रंगने का पर्याप्त प्रयास किया। साथ ही हमारी अर्थव्यवस्था पर भी उनकी साम्राज्यवादी नीति ने अपना शिकंजा कस लिया।

सामान्यतः सन् 1857 से हम हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत मानते रहे हैं किंतु यह भी सत्य है कि इस आधुनिकता के बीजवपन को सन् 1857 से लगभग 70–80 वर्ष पूर्व देखा जा सकता है। यह वह काल था जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने नवाब सिराजुददौला को प्लासी की लड़ाई में हरा दिया था। सन् 1849 में सिक्खों को भी पराजित कर अंग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत को अपने अधीन कर लिया था। अंग्रेजों के मद ने अब भारतीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया था। अंग्रेज़ों की नीतियों से असंतुष्ट देशी राजाओं, सिपाहियों, किसानों ने एकजुट होकर 1857 ई. में व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। अतः ब्रिटिश पूँजीवादी साम्राज्यवाद से टकराहट अब प्रारंभ हो चुकी थी। भारत जब ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बना तब अंग्रेज़ों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक तथा प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। आधुनिक जीवन चेतना ने साहित्य को मनुष्य जीवन के सुख–दुख से जुड़ने के लिए प्रेरित किया। परिणामतः जीवन चेतना की ये चिन्गारियाँ गद्य और पद्य दोनों में उठने लगीं। नया युग अपनी इस नई अभिव्यक्ति के लिए नई भाषा खोज ही रहा था। परिणामतः खड़ी बोली का आगमन हुआ और उसी ने आधुनिक विचारधारा को वहन कर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यों ब्रजभाषा का प्रयोग भी पद्य में चलता रहा पर उसमें पुरानी संवेदनाएँ ही अभिव्यक्ति पाती रहीं। खड़ी बोली गद्य एवं पद्य ने आधुनिक युग की नई चेतना एवं नई संवेदना को मुखर किया। यह चेतना आर्थिक, शैक्षिक, यातायात एवं मुद्रण आदि के परिप्रेक्ष्य में देखी भी जा सकती है।

3.2.1 नया आर्थिक ढाँचा

अंग्रेजी शासन से पूर्व भारत के गाँवों का आर्थिक ढाँचा प्रायः अपरिवर्तनशील तथा स्थिर था। गाँव अपने आप में स्वतः पूर्ण आर्थिक इकाई थे। गाँवों की अपरिवर्तनशीलता को लक्ष्य करके सर चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा है– 'भारतीय गाँव छोटे–छोटे गणतंत्र थे। उनकी आवश्यकताएँ गाँव में ही पूरी हो जाया करती थीं और उनका बाहरी संसार से कोई संबंध नहीं था। एक के बाद दूसरे राजवंश आये, एक के बाद दूसरे उल्ट फेर हुए, हिन्दू, पठान, मुगल, सिक्ख और मराठों के राज्य बने बिगड़े पर गाँव वैसे के वैसे रहे।

गाँव की जमीन पर सबका समान अधिकार होता था। किसान खेती करता था। गाँव की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति बढ़ई, लुहार, कुम्हार, धोबी, नाई, तेली आदि करते थे। जाति के आधार पर पेशा निश्चित नहीं हुआ करता था और एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति के व्यक्ति का पेशा नहीं कर सकता था क्योंकि उसके लिए वह स्वतंत्र नहीं होता था।

गाँव और नगर अपनी–अपनी इकाइयों में पूर्ण तथा एक–दूसरे से असम्बद्ध थे। मुख्य रूप से नगर के प्रकार थे– राजनीतिक महत्व के नगर, धार्मिक महत्व के नगर और व्यावसायिक महत्व के नगर। प्रायः नगरों में मूल्यवान वस्तुओं का निर्माण होता था। नगरों का उद्योग सामान्य वस्तुओं का निर्माण नहीं करता था। गाँव का घरेलू उद्योग बिल्कुल अलग था और नगरों का अलग। दोनों की अपनी–अपनी दृढ़ इकाइयाँ थीं।

अंग्रेज व्यापारी थे, उनका मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक धन कमाना था। यहाँ के उद्योग–धंधों को नष्ट करने के लिए हर तरह के हथकण्डों को अपनाया क्योंकि बिना इसके भारत में अपने व्यापार का एक छत्र राज्य स्थापित कर पाना कठिन था। जो कुछ उद्योग धंधे बच गए थे, वे नई सामाजिक व्यवस्था के कारण स्वयं नष्ट हो गए। अंग्रेज यहाँ से कच्चे माल माटी के मोल ले जाते और अपने देश से पक्का माल बनाकर फिर भारत में ऊँची कीमत पर बेचते। इस प्रकार भारत की धन–संपत्ति को ले जाते तथा भारत को आर्थिक दृष्टि से इंग्लैंड पर निर्भर बना देना चाहते थे।

भारत में अंग्रेजों के द्वारा जो आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन आया, उसमें भी उन्हीं का नाम था। उन्होंने गाँव की आर्थिक व्यवस्था में रद्दोबदल किया। गाँव की जमीन का बन्दोबस्त करके उन्होंने गाँव के लोगों को दो वर्गों–जमींदार और किसान–में विभाजित कर दिया। जमींदारी प्रथा 1793 में लार्ड कार्नवालिस ने लागू की, क्योंकि इससे उन्हें थोड़े से ही लोगों से मालगुजारी मिल जाती। कहने का अर्थ यह है कि जमींदारी पद्धति ने किसानों के शोषण का एक नया मार्ग प्रशस्त किया। किसान मेहनत करता और जमींदार लगान, नज़राना, जुर्माना आदि के नाम पर कमाई का बड़ा हिस्सा हड़प कर जाता। किसान अपना गुजारा चलाने के लिए साहूकार की शरण में जाकर फँस जाता क्योंकि वह मनमानी शर्तों और ब्याज पर ऋण देता। इस प्रकार किसान की स्थिति सदैव सोचनीय बनी रही। गाँव को दो इकाईयों में बाँट कर यानी ज़मींदार और किसान, अंग्रेजों ने गाँव की स्वाधीनता को नष्ट किया और उसे लूटा तथा महाजनी सभ्यता का जाल फैला दिया।

1820 से सर टामस मुनारो ने इस्तमारी बन्दोबस्त लागू करके ज़मीन को व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में बदल दिया। अब ज़मींदार और जोतदार दोनों ही जमीन का क्रय–विक्रय कर सकते थे। ज़मीन के व्यक्तिगत सम्पत्ति हो जाने पर खेती का व्यावसायिक हो जाना स्वाभाविक था। कृषि का उत्पादन यातायात की सुविधा के कारण शहरों में जाने लगा और खेती में उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन अधिक किया जाने लगा जो व्यावसायिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद थी किन्तु फिर भी किसानों की स्थिति आर्थिक दृष्टि से सुधारने की बजाय बिगड़ती

ही गयी क्योंकि किसान जमींदार और महाजन दो पाटों के बीच पिसता रहा एवं अंग्रेज समय–समय पर मालगुजारी की दर में भी वृद्धि करते रहते थे। किसानों की दयनीय स्थिति का उल्लेख भारतेंदु कालीन साहित्यकारों के साहित्यों में मिलता है।

भूमि के व्यक्तिगत सम्पत्ति बन जाने और उत्पादन वितरण के ढंग बदल जाने से सामूहिक कृषि करने का ढंग नष्ट हो गया और सम्बन्धों की रागात्मकता टूटने लगी। प्रत्येक व्यक्ति के अपने–अपने स्वार्थ सामने आये तथा अब अर्थ पर टिका हुआ स्वार्थ आत्मपरक हो गया। यहाँ से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में घटिया स्वार्थ का जन्म होता है।

अंग्रेजी सरकार की इस नयी व्यवस्था से जनता को घोर संकट का सामना करना पड़ा क्योंकि खेत अनेकानेक टुकड़ों में बँट गए और किसान तथा सरकार के बीच बहुत से मध्यस्थ हो गये। इसका प्रभाव पैदावार पर पड़ा और वह दिन–ब–दिन घटती गयी। खेती पर अंग्रेजों की व्यापार नीति के कारण, बहुत बोझ आ पड़ा, क्योंकि जो उद्योग धंधे अंग्रेजों ने नष्ट कर दिए थे, उनके कार्यकर्ता और कारीगर भी खेती पर ही आश्रित हो गए। नगरीय उद्योग भी अंग्रेजों की कृपा काल–कवलित हो गए। नगरों में भी पूँजीपति वर्ग मध्यवर्ग और श्रमिक वर्ग ने जन्म लिया।

पुरानी अर्थव्यवस्था के स्थान पर जिस नयी अर्थव्यवस्था को लागू किया गया उससे जाने–अनजाने ही भारतीय किसान भी विकास की ओर अग्रसर हुआ। गाँवों की जड़ता टूटी, गाँव और नगर में सम्पर्क स्थापित हुआ। घेरे में बंधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुख हो चली तथा जो देश केवल धार्मिक एकता में बंधा हुआ था अब राष्ट्रीय एकता की ओर जागरूक होने लगा। इससे जाति प्रथा की जड़ता को तोड़ा तो नहीं जा सका, किन्तु जाति प्रथा शिथिल अवश्य हुई।

3.2.2 नयी शिक्षा प्रणाली

भारतवर्ष का अठारहवीं शताब्दी के अंत में जिस पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली से सम्पर्क हुआ, वह भारत के ज्ञान–विज्ञान से प्रकृति से ही बिल्कुल भिन्न थी। भारतीय ज्ञान मतानुगतिका और परम्परायुक्त था जबकि पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान नए जीवन संदर्भो की ताजगी लिए हुए था। भारतीय ज्ञान–विज्ञान का प्रमुख लक्ष्य आध्यात्मिक और पारलौकिक था तथा पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान का लक्ष्य भौतिक और इहलौकिक था। भारत में विद्या वर्ग विशेष अथवा जाति विशेष तक सीमित थी किन्तु पाश्चात्य विद्या सर्व सुलभ थी।

भारतवर्ष ने अतीत में दर्शन, ज्योतिष, औषधि विज्ञान, गणित, धर्मशास्त्र, व्याकरण इत्यादि क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति की थी किन्तु अंग्रेजों के आगमन के समय भी उन्हीं को दुहराया जा रहा था। एक प्रकार से नयी उद्‌भावनाओं का मार्ग अवरुद्ध सा हो गया था क्योंकि भारतीय वेदादि की आप्तता, वर्णाश्रम धर्म की श्रेष्ठता, इहलौकिकता के प्रति अनासक्ति भाव यथा स्थिति बनाये रखने के पक्षधर थे। हालांकि उनकी उपयोगिता पर नयी परिस्थितियों ने प्रश्न चिन्ह लगा दिया था। यहाँ तक कि मुसलमानों में भी हिन्दुओं की ही भांति गतानुगतिका घर कर गयी थी।

मैकाले ने भारत की शिक्षा पद्धति पर टिप्पणी करते हए लिखा है–'हिन्दुओं और मुसलमानों की शिक्षा पद्धतियों में बहुत कुछ समानता थी। वे उस भाषा में शिक्षा देते थे जो जनता की भाषा नहीं थी। उनकी शिक्षा का मूल स्रोत धर्म था और उसकी आप्तता अपरिवर्तनीय थी। वे नए अभिनिवेश और परिवर्तन के विरुद्ध थे।' यह शिक्षा पद्धति अपने धर्म के प्रति केवल कट्‌टरता की भावना को दृढ़ करती थी न कि स्वतंत्र व्यक्तित्व और विवेक सम्मत दृष्टि का

निर्माण। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में जो भी कमियाँ रही हों किन्तु आधुनिकता की दिशा में एक गत्यात्मक प्रयत्न मानना ही चाहिए। इसके प्रचार–प्रसार में मुख्यतः इसाई मिशनरियाँ, अंग्रेज सरकार और व्यक्तियों के प्रयासों का विशेष योगदान है।

यों तो ईसाई मिशनरी, भारत के दक्षिणी प्रदेशों में ब्रिटिश राज्य की स्थापना से बहुत पहले ही, धर्म प्रचार का कार्य कर रही थी किन्तु उनका शिक्षा से कोई सम्बन्ध न था। जब 1758 ई. में डेविश मिशन कलकत्ता में आया और फिर 1893 ई. में मिशनरियों का दूसरा महत्वपूर्ण दल कलकत्ता में आया तो कैरे और उसके दो सहयोगियों ने जो मिशन से सम्बद्ध थे, नये बंगाल के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। बंगला गद्य साहित्य की नींव डालने वाले लोगों में कैरे का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1813 ई. में एक नया चार्टर स्वीकार किया जिसके अनुसार शिक्षा तथा अन्य उपयोगी कामों के लिए अनुदान देने की व्यवस्था की गयी। इस सम्बन्ध में अलेक्ज़ेन्डर डफ का उल्लेख करना आवश्यक है। क्योंकि डफ का कम्पनी के अधिकारियों पर विशेष प्रभाव था और वह धर्म प्रचार अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से चाहता था। अतः अनेक अंग्रेजी स्कूल और कालेज खोले गए।

ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म प्रचारार्थ हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मों पर निस्संकोच आक्रमण किया तथा उनकी निन्दा भी की एवं समस्त मिशनरी स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य की। उनका विश्वास था कि प्रत्येक अध्यापक विज्ञान और गणित पढ़ाते हुए प्रकारान्तर में भारतीय धर्मों को तोड़ने में सहायता करता है। यद्यपि उनकी यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई।

धीरे–धीरे मिशनरियों ने यह महसूस किया कि जन साधारण में धर्म प्रचार के लिए उनकी भाषा अर्थात् जन भाषा की आवश्यकता है और कैरे, ब्राउन, नेवलिन, स्किनर, बैले आदि ने भारतीय भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद किया एवं स्कूलों में पढ़ाने के लिए उन्हें पाठ्य पुस्तकें लिखनी पड़ी, जिनमें बंगला, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं को विशेष महत्व मिला। इन पाठ्य पुस्तकों में भारतीय धर्म, पुराण इत्यादि को भी विवरणात्मक गद्य में प्रस्तुत किया। स्त्री शिक्षा के प्रचार–प्रसार में भी उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी तमाम विकृतियों के बावजूद मिशनरियों ने लोगों को अंग्रेजी शिक्षा की ओर आकृष्ट किया एवं उनकी कई दृष्टियों से उपयोगिता भी सिद्ध हुई। इस भाषा के माध्यम से अंग्रेज व्यापारियों को विशेष लाभ हुआ। अब उन्हें भारतीय व्यापारियों से विचार विनिमय में काफी सुविधा होने लगी। अंग्रेजी जानने वाले लोगों को विदेशी फर्मों और कम्पनी के प्रशासन में नौकरी मिल जाती थी।

सन 1780 में वारेन हैस्टिंग्स ने मुसलमानों को प्रसन्न करने की दृष्टि से कलकता मदरसा खोला और हिन्दुओं के तुष्टीकरण के लिए 1791 ई. में बनारस के रेज़ीडेन्ट ने बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की 1801 ई. में कम्पनी के सिविल सर्वेन्ट्स को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए की गयी थी कि उसमें भारतीय अध्यापकों की नियुक्ति देशी भाषा में पाठ्य पुस्तकें और व्याकरण तैयार करने के लिए की गयी। इससे जो विशेष लाभ हुआ वह यह कि भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन को प्रोत्साहन मिला। 1823 में कंपनी ने लोक शिक्षा समिति का गठन किया। इस समिति को लोक शिक्षा के संबंध में सुझाव देना था। समिति में दो विचारधारा के सदस्य थे–एच.एच. विल्सन और एच.टी. प्रिंस प्राच्य भाषाओं के समर्थक थे। कलकत्ता के मदरसे और बनारस के संस्कृत कॉलेज का उन्होंने पुनर्गठन किया। एजूकेशन प्रेस की स्थापना 1828 ई. में कलकत्ता में की एवं इससे संस्कृत और अरबी की पुस्तकें छपने लगीं। किन्तु जब मैकाले 1834 ई. में भारत आया तो प्राच्य शिक्षा विरोधियों को काफी बल मिला। मैकाले संस्कृत, अरबी और फारसी का कट्टर

विरोधी था। उसने लार्ड बैंटिक को सुझाव दिया कि संस्कृत, अरबी और फारसी की शिक्षा को बन्द कर दिया जाये। लार्ड बैंटिक ने मैकाले के प्रतिवेदन को स्वीकार तो किया किन्तु संस्कृत, अरबी, फारसी मदरसों को दिए जाने वाले अनुदान को तो बन्द नहीं किया लेकिन प्राच्य विद्या के विद्यार्थियों को दी जाने वाली छात्रवृत्ति को समाप्त कर दिया एवं संस्कृत, अरबी और फारसी की पुस्तकों को छापना जारी कर दिया। बैंटिक की पाश्चात्य शिक्षा की संस्कृति ज्यों की त्यों उसे मान्य थी। 1844 में हार्डिंग्ज का घोषणा–पत्र प्रकाशित हुआ कि नौकरियाँ अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों को दी जायें। इससे अंग्रेजी के प्रसार में काफी सफलता मिली।

शिक्षा समिति के सम्मुख इस समय प्रमुख रूप से दो प्रश्न आये–शिक्षा का माध्यम और जनता में शिक्षा का प्रचार–प्रसार। शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में तीन विकल्प थे (1) माध्यमिक और विश्वविद्यालय का माध्यम अंग्रेजी हो, (2) संस्कृत, अरबी, फारसी हो, (3) बोलचाल की भाषा–हिन्दी, मराठी, बंगला, उर्दु, गुजराती आदि हो। चार्ल्स ग्रांट और मैकाले ने पहले मत का समर्थन किया और अंग्रेजों में विल्सन तथा शेक्सपियर जैसे व्यक्तियों ने देशी भाषा की उपयोगिता का समर्थन किया। शिक्षा समिति के भारतीय सदस्य जगन्नाथ सेठ ने 1847 ई. में शिक्षा माध्यम के सम्बन्ध में लिखा है–'यदि हमारा उद्देश्य भारतीय जनता का ज्ञानवर्धन और उनके मस्तिष्क का परिष्कार करना है तो हमें उनकी अपनी भाषा में शिक्षा देनी चाहिए। स्त्री–शिक्षा के लिए और दूसरा कौन सा उपाय हो सकता है? मैं अंग्रेजी के अध्ययन को हतोत्साहित नहीं करना चाहता, किन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह शिक्षा भारतीय जनता के अभिगम के बाहर है।' लेकिन अंग्रेज अधिकारियों पर इसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा और अन्त में अंग्रेजी उच्च शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर ली गयी।

1853 में ब्रिटिश संसद ने भारत में स्थायी शिक्षा नीति निर्धारित करने के लिए एक संसदीय समिति का गठन किया जिसके फलस्वरूप 1854 ई. में वुड घोषणा–पत्र जारी किया गया। उसके अनुसार जन समूह को शिक्षित करने का प्रयास शुरू हुआ। विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई और प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहन मिला। प्रत्येक प्रांत में शिक्षा विभाग स्थापित किए गए जिससे शिक्षा को एक सामान्य स्तर पर प्रतिष्ठित करने में सुविधा हुई।

उत्तर भारत (विशेषकर–उत्तर प्रदेश और बिहार) में लोग अंग्रेजी शिक्षा की ओर उन्मुख नहीं हुए क्योंकि इसका सम्बन्ध इसाई मिशनरियों से था, जिसे लोग शंका की दृष्टि से देखते थे। पटना (बिहार) के स्कूलों के इन्स्पेक्टर जनरल के दफ्तर को शैतान का दफ्तरखाना कहते थे। उत्तर प्रदेश में अनेक अंग्रेजी स्कूल खोले गये किन्तु विशेष प्रगति नहीं हुई।

जब हम नवीन शिक्षा पद्धति के लेखा–जोखा का अवलोकन करते हैं तो हमें अन्तर्विरोध मिलता है। इसाई मिशनरियाँ शिक्षा के माध्यम से लोगों को इसाई बनाकर पुण्य लूटने के चक्कर में थीं तो अंग्रेज सरकार को अपने दफ्तरों के लिए सस्ते देशी बाबुओं की आवश्यकता थी जिससे उनका प्रशासन और व्यवसाय निर्बाध गति से चल सके एवं देश के उत्साही व्यक्तियों की दृष्टि में भी सामान्यतः रोजी–रोटी का प्रश्न प्रमुख था।

लेकिन हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि नवीन शिक्षा पद्धति से धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण बना जो धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण तर्क–सम्मत और इहलौकिक हो सका तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता इसकी दूसरी उल्लेखनीय देन है। आश्रम धर्मी घेरे बन्दी से बाहर निकल कर व्यक्ति के अपने निर्णय को अहमियत मिली। मध्यकालीन धार्मिक कथाओं को विश्वसनीय बनाने एवं आधुनिक युग की समस्याओं को जोड़ने के मूल में यह प्रवृत्ति क्रियाशील थी।

3.2.3 मुद्रणालयों की भूमिका

भारत में मुद्रण यंत्र स्थापित करने का श्रेय पुर्तगालियों को है। 1550 ई. में उन्होंने दो मुद्रण यंत्र मंगवाकर धार्मिक पुस्तकों को छापना शुरू किया और 1674 ई. में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बम्बई में मुद्रणालय की स्थापना की गयी। 18वीं शताब्दी में कलकत्ता, हुगली, मद्रास आदि स्थानों पर छापाखाने खोले गए। सर्वप्रथम भारत के संदर्भ में यंत्र निकालने की पहल राजा राममोहन राय ने की और 1821 में 'सम्वाद कौमुदी' का प्रकाशन शुरू किया। श्रीरामपुर मिशन के तत्वाधान में दो पत्र–'समाचार दर्पण' और 'दिग्दर्शन' प्रकाशित हुए। फारसी भाषा में दो पत्र–'जाम–ए–जहाँ–नुमाँ' और 'मीरत–उल–अखबार'–निकाले गए। बम्बई में फरदून जी मर्जबान ने गुजराती प्रेस खोला और 1822 में 'बम्बे समाचार' प्रकाशित हुआ। द्वारिका नाथ टैगोर, प्रसन्न कुमार टैगोर और राजाराम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने 'बंगदूत' (1830 ई.) पत्र की नींव डाली। केवल इतना ही नहीं बल्कि 1830 ई. के अन्त तक कलकत्ता में बंगला भाषा में दैनिक, अर्ध साप्ताहिक, साप्ताहिक, त्रिसाप्ताहिक और मासिक पत्र प्रकाशित होने लगे।

पं. जुगलकिशोर शुक्ल के सम्पादकत्व में 'उदण्ड मार्तण्ड' हिन्दी का पहला पत्र 1826 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। कलकत्ता से ही 1834 ई. में 'प्रजामित्र' और 'दैनिक हिन्दी पत्र सुधा वर्षणा' श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। 19वीं शती के उत्तरार्द्ध तक देश में अनेक पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा। इससे देश में नये विचारों के आदान–प्रदान में सुविधा हो गयी। सामाजिक रुढ़ियों के विरोध में पत्रों का उपयोग किया गया तथा विदेशी सरकार की उन कार्यवाहियों का विरोध किया गया जो देश के हित में न थी। छापाखानों से वैज्ञानिक दृष्टिकोण और राष्ट्रीयता के प्रचार–प्रसार में अत्यधिक सहायता मिली। भारतीय नवजागरण के लिए प्रेस वरदान सिद्ध हुआ। छापाखाने से सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक विचारों के प्रचार–प्रसार की सुविधा ही नहीं हुई प्रत्युत समाचार पत्रों के माध्यम से विचारों का आदान–प्रदान भी होने लगा।

इस नवयुग ने मुद्रण का जो बड़ा माध्यम हमें दिया इसने साहित्यकारों को प्रसिद्धि का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया। छापाखाने के कारण साहित्य में वैयक्तिकता की भावना को बल मिला। जन रुचि के आकर्षण ने साहित्य को जन–जीवन के निकट ला दिया। भारतेन्दु युग में शायद ही कोई साहित्यकार ऐसा रहा हो जिसका किसी न किसी पत्र–पत्रिका से संबंध न रहा हो। इन पत्र–पत्रिकाओं में शुद्ध साहित्य ही नहीं छपता था बल्कि समसामयिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला जाता था। पत्र–पत्रिकाओं द्वारा एक–दूसरे की समस्याओं को समझना, उनको सुलझाना और उनको लेकर नयी–नयी वैचारिक भूमियों को तैयार करना। इस प्रकार जहाँ पत्र–पत्रिकाएँ जन तांत्रिक भावनाओं का पोषण कर रही थीं। वहीं दूसरी ओर समाज की रूढ़ियों पर भी प्रहार करती हुई राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। वस्तुतः आधुनिक काल के साहित्य में जो हमें वैविध्य, वैयक्तिक कल्पना–छवियाँ, बौद्धिकता, प्रयोगात्मकता आदि दिखायी पड़ती है इसका आंशिक दायित्व प्रेस पर ही है। छापाखाने के अभाव में अभिरुचियों और संवेदनाओं का आकलन बहुत ही कठिन था, केवल इतना ही नहीं प्रत्युत साहित्य और कला सम्बन्धी वादों, आन्दोलनों आदि को रूपायित करने में छापाखानों का विशेष योग है।

3.2.4 यातायात की स्थिति एवं विकास

19वीं शती में रेल, बस, जलयान (स्टीम शिप) इत्यादि यातायात के साधनों से यातायात में काफी परिवर्तन आया और संसार सिमट कर छोटा हो गया तथा इससे लोगों में राष्ट्रीयता

और वैचारिक एकता की भावना भरने में सहायता मिली। इससे संकीर्ण भावना को कुछ हद तक समाप्त करने में भी सहायता मिली।

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में यातायात का विशेष योग होता है। इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति से वहाँ के उद्योगपतियों के सामने यह समस्या थी कि वे अपने उत्पादन की खपत कहाँ करें तथा कारखानों के लिए कच्चा माल कहाँ से लायें? भला उन्हें भारत से अच्छा बाजार कहाँ मिलता। अतः उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार से भारत में रेलवे की स्थापना और सड़क निर्माण के लिए अनुरोध किया। लार्ड डलहौजी रेल निर्माण योजना रेलवे की स्थापना का अगुआ माना जाता है। उसने इसके मूल में निहित आवश्यकताओं का उल्लेख स्वयं किया है कि अंग्रेजों को आर्थिक लाभ के अलावा बाहरी आक्रमणों और आंतरिक विद्रोहों से अपनी सुरक्षा करने की ओर के लिए. आवागमन की ओर विशेष ध्यान देना पड़ा। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक युग में सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक विकास के लिए यातायात के साधनों के विकास के लिए नहीं किया गया बल्कि अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए सड़कों और रेलों का निर्माण किया था। हाँ इससे अनचाहे भारतीयों को भी लाभ मिला।

बोध प्रश्न– 1

1. नीचे कुछ विषय दिए गए हैं। प्रत्येक को लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए–

   i) नया आर्थिक ढाँचा .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   ii) नई शिक्षा प्रणाली .....

   .....

   .....

   .....

2. मुद्रणालयों की आधुनिक युग के वैचारिक–आधार को प्रभावित करने में क्या भूमिका रही? दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए–

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

3. यातायात की स्थिति ने वैचारिक आधार की समृद्धि में क्या भूमिका निभाई ? लगभग पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. नीचे लिखे वाक्यों में से एक वाक्य सही है (अ) का निशान लगाकर बताइये कौन सा वाक्य सही है?

अ) 1) अंग्रेजों की नयी आर्थिक नीति से गाँवों की आर्थिक दशा में सुधार हुआ।

2) अंग्रेजों की नयी आर्थिक नीति से गाँवों के लोगों के संबंधों की रागात्मकता टूटी।

3) नयी आर्थिक नीति से गाँव का आर्थिक ढाँचा अपरिवर्तनशील हो गया।

4) जमींदारी प्रथा से किसानों को लाभ हुआ।

ब) निम्नलिखित वाक्यों में से एक वाक्य सही है (अ) का निशान लगाकर बताइये वह कौन सा वाक्य है ?

1) नयी शिक्षा प्रणाली से विद्या वर्ग–विशेष की संपत्ति हो गयी।

2) नयी शिक्षा प्रणाली से भारत की धर्मनिरपेक्षता को हानि पहुँची।

3) अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली से आधुनिकता की दिशा में गत्यात्मकता आयी।

4) नयी शिक्षा प्रणाली से जन–भाषा की उन्नति हुई।

स) निम्नलिखित वाक्यों में से एक वाक्य सही है उसे (अ) के निशान से चिन्हित कीजिए

1) मुद्रणालय के प्रचार से वैज्ञानिक दृष्टिकोण और राष्ट्रीयता को बलमिला।

2) मुद्रणालय के आगमन से साहित्य में वैयक्तिकता का हास हुआ।

3) छापाखाना के प्रचार से अनेक पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से एक दूसरे को समझने की समस्याएँ बढ़ गयीं।

4) हिन्दी का प्रथम पत्र दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

3.3 पाश्चात्य जीवन–दृष्टियाँ

आधुनिक युग भारत में ही नहीं विदेशों में भी अनेक आंदोलनों, परिवर्तनों एवं विविध विचारधाराओं का युग माना जाता है। इस अवधि में एक ओर तो सामाजिक आर्थिक, सांप्रदायिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अनेक आंदोलन हुए, वहीं दूसरी तरफ रचनात्मक तथा

आलोचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में भी विविध विचारधाराओं का आविर्भाव और विकास हुआ। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के गंभीर परिणाम, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विविध रंग, युद्ध–शांति के लिए किए गए प्रयास, सभी को साहित्य गद्य एवं पद्य विधाओं में सहज ही अभिव्यक्ति पाते देखा जा सकता है। गद्य की अनेकों विधाओं जन्म, प्रचार–प्रसार, लोकप्रियता तथा पद्य की लोक–जीवन एवं जन–जन की समस्याओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता इसी युग में उभरकर सामने आई।

वास्तव में साहित्य की इन धाराओं, विधाओं एवं चेतनाओं को जिन–जिन दृष्टियों, विद्वत मतों, संस्थाओं तथा वैचारिक धरातलों ने प्रभावित किया या उनके लिए एक उर्वर–भूमि तैयार की उनमें पाश्चात्य देशों की विविध विचारधाराओं अथवा सिद्धांतवादों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। यहाँ हम इन विद्धांतवादों पर भी संक्षिप्त चर्चा कर लें तो उचित होगा।

3.3.1 आदर्शवाद

आदर्शवादी सिद्धांत का उद्देश्य मनुष्य की बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक क्षेत्रों में उन्नति करना है। यों आदर्शवादी विचारधारा भारतीय साहित्य के क्षेत्र में बहुत प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। विदेशी साहित्य में भी आदर्शवादी विचारधारा ने पर्याप्त लोकप्रियता हासिल की। प्राचीन यूनानी विचारकों में प्लेटो और अरस्तु आदर्शवादी चिंतक ही माने जाते हैं। आगे चलकर सर टामस सूर ने भी आदर्शवादी विचारधारा का ही प्रचार किया। रूसो ने भी एक आदर्श संस्था के रूप में राज्य को मनुष्य की बौद्धिक, आध्यात्मिक उन्नति का प्रमुख आधार माना। कांट ने विश्व संघ को शांति के लिए आदर्श संस्था बताया। इसी प्रकार जान फिटटे, हामबोल्ट, टी.एच. ब्रैडले तथा हीगेल आदि चिंतकों ने अपनी चिंतन पद्धतियों में बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति को ध्यान में रखते हुए आदर्शवाद को ही मान्यता दी।

हिंदी में आदर्शवाद शब्द का प्रयोग 'आइडियालिज्म' के अर्थ में किया जाता है। हिंदी में उदान्त पर बल देना इसका प्रमुख लक्ष्य रहा है। संयम, त्याग और बलिदान इसकी प्रमुख भावनाएं हैं। इसमें आध्यात्मिकता का समावेश भी मिलता है। हिंदी में यह आदर्शवादी विचारधारा प्राचीन युग से ही रही है। कबीर, सूर, तुलसी आदि कवि मूलतः आदर्शवादी ही माने जाते हैं। इसी प्रकार प्रेमचंद, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि साहित्यकार आदर्शवादी विचारधारा के ही पोषक माने जाते हैं।

3.3.2 अभिव्यंजनावाद एवं रूपवाद

आधुनिक युग की विशिष्ट चिंतनधाराओं में अभिव्यंजनावाद की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में इसके संकेत मिलने लगते हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मनी साहित्य में तो इसका विशेष विकास देखा जा सकता है। अभिव्यंजनावाद के प्रमुख प्रवर्तक तो इटली के चिंतक क्रोचे माने जाते हैं। क्रोचे कला को सदैव आत्माभिव्यक्ति का एक रूप मानते हैं। क्रोचे ने अनेक उदाहरण देकर यह सिद्ध भी किया है कि कलात्मक अभिव्यक्ति साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। अभिव्यंजनावाद का मुख्य सिद्धांत ही सौद्देश्य अभिव्यक्ति तथा मनोवैज्ञानिक आंतरिक स्थिति की उद्देश्यपूर्ण अभिव्यंजना पर बल देता है। क्रोचे कला में समानता और सौंदर्य तत्वों के कट्टर समर्थक रहे हैं। उनके अनुसार सौंदर्य किसी वस्तु का कोई गुण नहीं है अपितु सौंदर्य तो आत्मिक क्रियाशील के स्वभाव के रूप में उत्पन्न होता है। यही कारण है कि क्रोचे, हीगल, शापेनहावर तथा कोट आदि विचारक कला को ज्ञान का ही एक रूप मानते हैं। अभिव्यंजनावाद ने पाश्चात्य वैचारिक आंदोलनों को ही नहीं भारतीय साहित्यकारों तथा

साहित्यांदोलनों को भी प्रभावित किया। कला और साहित्य में विशुद्ध अभिव्यंजना को प्रधानता देने वाली यह विचार प्रणाली सौंदर्य शास्त्रीय आधार लेकर अपेक्षाकृत व्यापक पृष्ठभूमि पर साहित्य में प्रतिष्ठित हुई। अभिव्यंजना परिणामतः साहित्य और कला ही चरम परिणति सिद्ध हुई। हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा नंददुलारे वाजपेयी आदि समीक्षकों ने अपनी प्रतिक्रियाओं में अभिव्यंजनावाद पर बराबर विचार किया।

रूपवाद कला के बाह्य एवं आकार से सम्बद्ध होता है। इसे 'फार्मलिज़्म' का पर्याय माना जाता है। इसका आरंभ बीसवीं शताब्दी के दूसरे शतक में हुआ। इस सिद्धांत के विचारकों की स्थापना है कि कला में शिल्प का ही विशेष महत्व होता है। इनके अनुसार आधार या रूप किसी ऐसे उद्देश्य की विशेषता है जो अनुभव की गई हो। प्लेटो ने रूप को एक प्रकार का अनुकरण ही माना था। अरस्तू का मानना था कि रूप केवल आकार ही नहीं वरन् आकार का प्रदानकर्ता भी है। अतः रूप केवल रचना ही नहीं उसका आधार भी है। इनके अनुसार एक लेखक जब साहित्य सृजन का कार्य करता है तब बाह्य तत्वों से युक्त एक रूप तथा आकार वह उसे दे देता है। जो आकार वह अपनी कृति को देता है वह भाषागत होता है। पर इस सिद्धांत का युरोप में मार्क्सवादी विचारधारा ने बहुत विरोध किया। आधुनिक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी यह विचारधारा अपना कोई उल्लेखनीय प्रभाव न छोड़ सकी।

3.3.3 अस्तित्ववाद

सोरेन कीकेंगार्ड (1813–1855) तथा फ्रीडरिख नीत्शे अस्तित्ववाद के जन्मदाता माने जाते हैं। कार्ल जेस्पर्श (1883), हेडेगर (1889) तथा गैब्रिल मार्शल (1889) ने इसे तर्कों के आधार पर प्रतिष्ठित किया। अस्तित्ववाद जीवन की सम्पूर्णता के माध्यम से परिवेश को जानने का सचेत प्रयास कहा जाता है। अस्तित्ववाद साहित्य का एक तर्कशास्त्र है, एक मनोविज्ञान है और इसे एक दर्शन कहा जा सकता है।

आधुनिक ज्ञान–विज्ञान ने मनुष्य को कुछ हद तक बुद्धिवादी बना दिया है। जर्मन दार्शनिक नीत्शे की घोषणा–ईश्वर मर गया–ने बौद्धिक जगत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया, यथार्थ का स्वरूप ही बदल गया। पुराने मूल्य विघटित हो गए और मनुष्य ने पाया कि वर्तमान परिस्थितियों में वह असहाय, क्षुद्र और निरर्थक प्राणी हैं। विज्ञान की प्रगति ने भी निश्चयवादी सिद्धांत को खोखला सिद्ध कर दिया। फ्लैक के क्वाटंम सिद्धांत और आन्स्टीन के सापेक्षवाद से सिद्ध हो गया कि न तो कोई सार्वभौम सत्य है और न ही शाश्वत नैतिकता। इस पर अस्तित्ववाद ने अपनी मुहर लगाकर और भी अधिक पुष्ट कर दिया।

अस्तित्ववाद ने अपने पूर्ववर्ती दर्शनों और विज्ञान की अमूर्तता पर आक्रमण किया तथा अपने ठोस अनुभवों एवं व्यक्ति के बुनियादी प्रश्नों के साथ जोड़ा। ये आधारभूत प्रश्न हैं–व्यक्ति की व्याग्रता, दुख, निराशा, अकेलापन, मृत्यु बोध, स्वतंत्रता, त्रास आदि। इसके साथ ही वह सामूहिकवाद और निश्चयवाद के विरुद्ध भी खड़ा हुआ। वह उन समस्त विचारों के विरुद्ध है जो व्यक्ति को अ–मनुष्य और अस्तित्वहीन बनाते हैं। उसकी दृष्टि में मनुष्य स्वतंत्र है–वह न वस्तु है और न ही मशीन, वह तो क्रियात्मक शक्ति है। वह स्वतंत्र निर्णय लेने में समर्थ है और उसके लिए स्वयं जिम्मेदार है। सात्र, कीर्केगार्ड आदि पर अस्तित्ववादी विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। आधुनिक चित्रकला भी इससे कम प्रभावित नहीं हुई। सेवा, बान गोग, पिकासो आदि पर इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सातवें दशक में हिंदी साहित्य में अकविता, अकहानी, अनुपन्यास और अनाटक की जो चर्चाएं हुईं हैं उनके आधार पर लिखा गया साहित्य आज के अनिश्चय, व्यर्थता, अजनोवियत, अलगाव, अकेलेपन, आत्मनिर्वासन आदि को ही व्यक्त करता है।

3.3.4 मनोविश्लेषणवाद एवं अतियथार्थवाद

आधुनिक युग का वैचारिक आधार सुदृढ़ एवं समृद्ध करने में जिन पाश्चात्य विद्वानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही उनमें फ्रायड भी एक हैं। फ्रायडीय मनोविश्लेषण के काम सिद्धांत को इस युग में बहुत मान्यता प्राप्त हुई। फ्रायड का मानना है कि समस्त कलाओं के मूल में दमित और अतृप्त काम भावना होती है। सामाजिक निषेध काम वृत्तियों की मुक्त अभिव्यक्ति को बाधित करते हैं। परिणामतः ये वृत्तियाँ कुंठित एवं दमित होकर अपनी एवं अचेतन मन में निहित रहती हैं और अपनी अभिव्यक्ति के अवसर खोजती रहती है। कला इन्हें यह अवसर प्रदान करती है। यह कुंठित काम मानव में छिपा रहता है सामान्यतया विभिन्न मानसिक रोगों एवं विकृतियों को जन्म देता है। कलाकार कला और उदात्त माध्यम से काम को उदात्त रूप दे देता है।

फ्रायड ने स्वप्न सिद्धांत की चर्चा करते हुए भी यही कहा कि स्वप्न दमित इच्छाओं की ही पूर्ति प्रत्यक्ष के प्रतीकात्मक रूप में करते हैं अवचेतन में निहित दमित कामनाएँ सामाजिक विषय की पहुँच से बाहर होने के कारण एक–एक कर विभिन्न रूपों में होने लगती हैं। मनोविश्लेषण शास्त्रियों ने इन कुंठित एवं दमित इच्छाओं की खोज करने के लिए 'फ्री एसोसिाएशन' पद्धति को जन्म दिया जिसमें व्यक्ति को पूरी तरह पूर्ण विश्राम की अवस्था में रखकर उसके मन में उठने वाले सभी भावों और विचारों को ज्यों का त्यों उसी क्रम में प्रस्तुत कराया जाता है। इन प्रस्तुत तथा बिखरे हुए विचारों तथा असंबद्ध मनोविकारों का मानसिक विश्लेषण करते हुए उन मनोग्रंथियों को खोला जाता है। इसी प्रक्रिया से मानसिक रोगों का उपचार भी किया जाता है।

इस सिद्धांत को आगे बढ़ाने वालों में फ्रायड के बाद युंग, एडलर मैक्डूगल आदि मनोवैज्ञानिकों का नाम उल्लेखनीय है। इसी प्रकार फ्रेम, होने, सलीवन, कार्डीनर तथा मार्गरेट मीड आदि के नाम भी लिए जा सकते हैं। हिंदी में भी कविता तथा गद्य में जिस कुंठा और असंगत निरावृत श्रृंगारिकता को वाणी मिली वह इसी फ्रायडीय मनोविश्लेषण की देन है। यौन प्रतीकों, बिम्बों, स्वप्न प्रतीकों तथा चित्रों का खुला प्रयोग इस साहित्य में भी देखा जा सकता है। अज्ञेय, नरेश मेहता, यशपाल, जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी तथा उपेन्द्रनाथ अश्क आदि की कहानियों, उपन्यासों कविताओं आदि साहित्य में इन मानसिक ग्रंथियों को आप देख भी सकते हैं। उग्र तथा मन्नू भंडारी की कहानियों में भी इसे देखा जा सकता है।

अतियथार्थवाद (सर्रीयलिज्म) फ्रायडीय मनोविश्लेषणवाद की ही परंपरा का अगला चरण है। प्रथम विश्व–युद्ध के पश्चात् जो यथार्थवाद साहित्य की दुनिया में फैल रहा था उसी की प्रतिक्रिया में अतियथार्थवाद एक नवीन रूप में विकासमान था। इसके प्रवर्तक चार्ल्स बॉदलेयर माने जाते हैं। इनसे पहले हाब्रीमान, आर्थन, रिबो तथा मेलार्मे आदि भी अतियथार्थवाद के समर्थक रहे हैं। सन् 1910 के बाद इस विशिष्टवाद ने खाली प्रसिद्धि प्राप्त की। सन 1930 के बाद यह आंदोलन फ्राँस के बाहर के देशों में भी फैला। इसकी नई व्याख्या उस सत्ता के रूप में की गई जो यथार्थ होते हुए भी दृष्टिगत न हो। आगे चलकर हरबर्ट रीड ने इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए इसे स्पष्ट भी किया। इसके उद्देश्यों में अवचेतन के यथार्थ का चित्रण प्रमुख रहा। इस सिद्धांत के समर्थकों ने बौद्धिक नियंत्रण की उपेक्षा करते हुए अभिव्यक्ति करने पर बल दिया तथा स्वतः लेखन को आदर्श माना। परिणामतः इस पद्धति में प्रतीकात्मक संकेतों की बहुलता हो गई। इस पद्धति ने मानसिक यथार्थ को तो स्वाभाविक वाणी प्रदान की परंतु वस्तु विषय की दृष्टि से नैतिकता और सौंदर्यवादी मूल्यों का ह्रास ही हुआ। शैली भी अस्पष्ट तथा छिन्न–भिन्न सी हो गई। प्रथम महायुद्ध की विभीषिकाओं का ही परिणाम था कि लेखक और कलाकार वस्तु जगत से

भागकर अवचेतन में शरण लेने लगा था। इस सिद्धांत ने भी हिंदी साहित्य के आधुनिक युग की एक पीढ़ी को बहुत प्रभावित किया। अज्ञेय तथा धर्मवीर भारती के साहित्य में इसे देखा जा सकता है। परंतु अपनी अनास्था और असामाजिकता के कारण यह भी अधिक समय तक न रूक सका।

3.3.5 मानवतावादी विचारधारा

साहित्य में मानववाद की भावना फ्रांसीसी दार्शनिक काम्ते के विचार दर्शन के प्रभाव स्वरूप विकसित हुई जिसका प्रभाव हिन्दी पर बंगला साहित्य के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। लोक सेवा को ही ईश्वर सेवा समझा गया। काम्ते के मतानुसार धर्म का लक्ष्य जीवन में सामंजस्य लाना है, हृदय एवं मस्तिष्क दोनों को समानतया आलिंग्न में आबद्ध करने से यह सामंजस्य स्थापित हो सकता है। मानवता एक ऐसा धर्म है जो सभी मनुष्यों को संगठित करता है एवं 'आत्मात्सर्ग' उसका पथ–प्रदर्शक बन जाता है।

तत्कालीन युग में काम्ते का विधयवाद (पाजिटिविस्ट) दर्शन, भारत में काफी लोकप्रिय हुआ। हमारे देश के स्वतंत्रता आंदोलन के आरंभिक दिनों में हमारी राष्ट्रीय जागृति के लिए उसमें उपयुक्त विचारधारा थी अतः राजनीति में मानवतावाद को आधार बनाया गया इससे इसकी मान्यता और अधिक बढ़ गयी। अब जो राजनैतिक स्वतंत्रता का आंदोलन था, वह सामान्य जन–समुदाय को लेकर चला। अब बड़े–बड़े विचारक व्यापक दृष्टिकोण को लेकर सामाजिक अवस्था पर मनन करने लगे। महात्मा गांधी की समस्त क्रियात्मक योजनाएँ सामाजिक उत्थान के लिए बड़ी शक्तिशाली सिद्ध हुई। गांधी जी की मानवतावादी भावना ने निम्न स्तर के लोगों की सामाजिक दशा में बड़ा परिवर्तन ला दिया। उनकी मानवतावादी भावना के कई रूप मिलते हैं–अहिंसा, सत्याग्रह, राजनीतिक समानता, अछूतोद्धार, हिन्दू–मुस्लिम एकता, धार्मिक समन्वय, ग्रामोद्धार, जमींदारी का विरोध।

इस युग के महान विचारक, समाज सुधारक एव मानवतावाद के समर्थक विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर थे उनकी कविता में मानवतावाद बड़े व्यापक रूप में अभिव्यक्त हुआ। उनकी मानवतावादी भावना के प्रमुख रूप–विश्व–संस्कृति, आध्यात्मिकता, अन्तर्राष्ट्रीयता, मानव–दुःख, निवारण और जाति भेद को मिटाने में तत्परता आदि हैं।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के तृतीय उत्थान (1916–1936) में सामाजिक अवस्था का मुख्य रूप मानवतावादी भावनाओं में केन्द्रित है और कुरीतियों के निवारण के कुछ ठोस रूप दिखायी दिए। निर्धन और शोषित जैसे–कृषक, श्रमिक, अछूत आदि के प्रति सहानुभूति का प्रदर्शन मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, नारी के उत्थान का प्रयत्न रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं में मिलता है। छायावादी कविता में मानवतावाद का विकास हुआ और इसमें विश्व बन्धुत्व की पुकार सुनाई पड़ी। छायावाद का सौंदर्यवाद मानवतावादी विचारधारा से अनुप्राणित है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मानव सेवा की ईश्वर सेवा के रूप में प्रतिष्ठित करने की भावना हिन्दी के रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय, जयशंकर प्रसाद मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध प्रभूति कवियों की कविताओं में व्यक्त हुई।

3.3.6 मार्क्सवादी विचारधारा

समाज के बुनियादी ढाँचे को बदलने में आर्थिक कारण सांस्कृतिक कारणों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होते हैं। मार्क्सवाद एक भौतिक दर्शन है। सन् 1917 में रूसी क्रांति की सफलता को देखकर सोवियत संघ की नवीन शासन पद्धति और उसके मूल में काम करने वाले

मार्क्सवादी सिद्धांतों को जानने और समझने के लिए भारत के लोगों के मन में प्रबल उत्कंठा थी किन्तु उसके प्रवेश पर भारत में अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबंध लगा रखे थे।

भारत में मार्क्सवादी विचारधारा के बीजारोपण का श्रेय काजी नज़रूल इस्लाम, मुजूज़फर अहमद (भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी के संस्थापक) और गुलाम हुसैन को है। श्रीपाद अमृत डांगे ने 1921 में 'गांधी और लेनिन' शीर्षक से अंग्रेजी में पुस्तक लिखी और उसमें उन्होंने लेनिन का समर्थन किया। इससे प्रभावित होकर बम्बई के एक सपन्न नागरिक रणघोडदास लोटवाला ने श्री डांगे के सहयोग से एक लाख रुपये से मार्क्सवादी साहित्य के प्रकाशन और प्रचार के लिए एक संस्था स्थापित की। 1922 में श्री डांगे के संपादकत्व में 'सोशलिस्ट' नामक साप्ताहिक भी प्रकाशित हुआ।

हिन्दी जगत् में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रथम निबंध लिखने का श्रेय श्री जनार्दन भट्ट को है। उन्होंने 1914 ई. में 'हमारे गरीब किसान और मजदूर' शीर्षक निबंध लिखा था किन्तु हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में 1936 ई. से सामाजिक क्षेत्र में आर्थिक परिस्थिति अधिक मुखरित हुई। पूंजीवाद, देशव्यापी दरिद्रता, महंगाई, बेरोजगारी और वर्ग संघर्ष की भावना में वृद्धि आदि ने मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभुत्व को बढ़ाया। इसके अलावा आर्थिक संबंधों में कल्पना और भावुकता न्यून से न्यूनतर होती गयी। आगे चलकर द्वित्तीय महायुद्ध की संभावना ने जीवन को बहुत कटु बना दिया था। एक गहरी निराशा की भावना ने जन–जीवन को आच्छादित कर लिया। गरीबी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। साम्राज्य और पूँजीवाद के शोषण चक्र से जनता पीड़ित थी।

धीरे–धीरे विचारकों का ध्यान यथार्थ की कठोर परिस्थितियों एवं निम्न वर्ग की करुण दशा की ओर गया और वर्ग संघर्ष से व्यापक जागृति हुई तथा दलित वर्ग विद्रोह कर तत्पर हुआ। इस प्रकार मार्क्सवाद का महत्व बढ़ता ही गया।

मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी विचारधारा के अनुसार सारे विश्व में पूंजीवाद अर्थनीति से पीड़ित निम्न वर्ग का एक विशाल समुदाय निर्मित हो गया है। इन्हीं मज़दूरों और दीन–जनों की सार्वदेशिक प्रगति में योग देना प्रगतिवादी कवि का मुख्य लक्ष्य है।

प्रगतिवादी युग में ही एक और विचारधारा प्रवाहित हुई और वह है फ्रायड से प्रभावित मनोविश्लेषणवादी काव्य की। इस युग के मनोविज्ञान की उन्नति एक महत्वपूर्ण घटना है। इस मनोविश्लेषण के युग में प्राकृतवाद को अपने लिए उपयुक्त वातावरण मिला। अंग्रेजी साहित्य के एक्स्प्रेरिन्टालिज्म का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रगतिवादी साहित्यकारों में हम उदाहरणार्थ प्रेमचंद और निराला को प्रस्तुत कर सकते हैं।

3.3.7 समाजवाद एवं साम्यवाद

फ्रांस की राज्य क्रांति से ही समाजवादी विचारधारा का श्रीगणेश माना जाता है। आज समाजवाद अपने मूल रूप से पूर्णतः भिन्न स्वरूप लिए है। आविर्भाव के समय समाजवाद का सीधा विरोध साम्राज्यवाद से था। आगे चलकर यह विरोध पूँजीवाद से होने लगा। यह नया रूप कार्ल मार्क्स की देन बना। सन् 1848 ई. में कार्ल मार्क्स ने साम्यवादी घोषणा पत्र जारी किया और सर्वप्रथम इतिहास की आर्थिक व्याख्या देते हुए एक नए सिद्धांत की पुष्टि की। यही वह समय था जब समाजवाद को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त हुई।

मार्क्स ने हीगेल के आदर्शवादी विचारों से असहमत होते हुए भी उसकी चिंतर पद्धति का अनुकरण किया। मार्क्स का मानना था कि पूँजी ही वह शक्ति है जो समाज के विभिन्न अंगों

की आर्थिक रचना का आधार है और इसलिए इसी पर उसके विभिन्न कार्य क्षेत्रों की प्रणालियाँ, राज्य–व्यवस्था, साहित्य एवं कला आदि स्थिर हैं। आर्थिक व्यवस्था ही समाज की नींव है और साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्तियाँ इसकी ऊपरी मंजिलें हैं। यही कारण है कि समस्त क्रांतियों का मूल कारण आर्थिक ही रहता है। अतः कार्ल मार्क्स को आधुनिक समाजवाद का जन्मदाता माना जाता है यद्यपि उसके बाद भी समाजवादी अविचारधारा में बहुत से परिवर्तन हुए हैं।

प्रसिद्ध भारतीय समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्र देव ने भी कार्ल मार्क्स की तरह ही सामाजिक उत्पादन व्यवस्था के विकास क्रम के संबंध में विचार करते हुए यह स्पष्ट किया कि उत्पादन शक्ति के विकास में एक मुख्य अवस्था ऐसी भी आई थी कि जब सामंत तथा कृषक वर्गों के स्थान पर पूँजीपति और श्रमिक नामक दो आधारभूत नए वर्ग प्रभूत्व में आए। उत्पादन संबंधों को जोड़कर ही समाज का आर्थिक ढाँचा बनता है और उसी आर्थिक ढाँचे के आधार पर राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दीवारें खड़ी होती हैं। समाजवाद अपने मूल रूप में प्रगतिशील आंदोलन है।

पाश्चात्य विद्वान हुगन ने समाजवाद को श्रमिकों द्वारा संचालित एक राजनीतिक आंदोलन माना, जिसका उद्देश्य वे शोषण का उन्मूलन तथा एक ऐसी प्रजातंत्र व्यवस्था बताते हैं जिसमें उत्पादन वितरण शक्ति समाज के अधिकार में होती है। लिटर ने समाजवाद राष्ट्रीय स्वरूप में परिवर्तन की एक प्रेरणा माना जिसका स्रोत वे श्रमिक वर्ग हैं। फ्लिंट ने समाजवाद की साम्यवाद तथा समूहवाद नामक दो शाखाएँ बताई। समाजवादियों ने क्रांति को प्रमुख महत्व दिया और समाजवाद का उद्देश्य हानिकारक प्रतिद्वंद्विता, पूँजीवाद तथा पैतृक अधिकारों का अंत करके उसके स्थान पर उत्पादन के साधनों तथा उत्पादक यंत्रों का पुनर्वितरण करना माना। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में समाजवादी इस विचारधारा को छायावादोत्तर काव्य में प्रायः अधिकांश विधाओं में प्रश्रय मिला।

साम्यवाद मूलतः एक प्रगतिशील एवं परिवर्तनशील वाद है। यही कारण है कि प्लेटो के समय के साम्यवाद तथा आधुनिक साम्यवाद में बहुत अंतर आ गया। आधुनिक साम्यवाद को कार्ल मार्क्स, लेनिन तथा स्टालिन जैसे साम्यवादियों ने नया प्रारूप दिया। यही कारण है कि राबर्ट फ्लिंट जैसे विचारक ने साम्यवाद को समाजवाद की ही एक विचारधारा माना। नोयज का मानना है कि साम्यवाद जीवन के दर्शन का एक रूप है और जीवन का यही दर्शन ही साम्यवाद की नींव है। साम्यवादी विचारक इसे विश्वस्तरीय समस्याओं के सुलझाने का एक क्रांतिकारी और सार्वभौमिक दर्शन मानते हैं। प्रसिद्ध भारतीय साम्यवादी डांगे ने बताया है कि कैसे समाज दासों और धन–स्वामियों के दो वर्गों में बँटा। सन 1848 में मार्क्स और एंजिल्स का साम्यवादी घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ था। इसके अनुसार साम्यवाद का आधार आर्थिक सिद्धांत के स्थान पर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद माना गया था। मार्क्स के अनुसार क्रांति तथा शांति एक ही सिद्धांत के दो भिन्न पक्ष हैं। शांति के लिए ही क्रांति की आवश्यकता होती है। आधुनिक हिंदी साहित्य में यशपाल, नागार्जुन, त्रिलोचन आदि कई साहित्यकारों की कृतियों में यह विचारधारा बौद्विक आधार पर स्पष्टतः समाविष्ट हुई देखी जा सकती है।

3.3.8 प्रतीकवाद और बिम्बवाद

प्रतीकवाद का प्रवर्तन एक आधुनिक वैचारिक आंदोलन के रूप में फ्रांस में हुआ था। आगे चलकर यह पूरे विश्व में एक प्रतिनिधि विचारधारा के रूप में व्याप्त हो गया। इनके अनुसार किसी भी विषय के प्रतीक के रूप अभिव्यंजना करना ही प्रतीकवाद है। साहित्यिक प्रतीकों

को मुख्यतः भावनात्मक एवं व्यंजनात्मक साम्य पर आधारित माना जाता है और वैज्ञानिक प्रतीक किसी विशिष्ट पदार्थ अथवा बिम्ब को अभिव्यंजित करते हैं। अतः भाव प्रेषण तथा अभिव्यक्ति के सभी माध्यमों को प्रतीकात्मक कहा जा सकता है। समाज, धर्म, संस्कृति तथा साहित्यिक क्षेत्रों की अधिकांश क्रियाएँ तो सत्र रूप में प्रतीकात्मक होती हैं, अचेतन में होने वाली प्रक्रियाएँ भी प्रतीकात्मक ही कही जा सकती हैं। केनपवर्ग ने प्रतीक की विस्तृत व्याख्या की है। वे कहते हैं कि प्रतीकों का कार्य किसी अनुभव के प्रतिरूप अथवा प्रतिवृति का शाब्दिक साम्य अभिव्यंजित करना है। मानव भाव तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक प्रतीकों का उपयोग किया जाता है। प्रतीकवाद नग्न तथा यथार्थ चित्रण के स्थान पर प्रतीकात्मक चित्रण करने वाला महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इससे यथार्थ के आधार पर होने वाले नग्न चित्रण से युक्त अभिव्यक्तियों को रोका जा सकता है। प्रतीकवाद 19वीं शताब्दी के मध्य में फ्रांस में प्रकृतिवाद की प्रतिक्रिया के रूप में जन्मा था। इसे बाद में मेलार्मे, बलेरी, बर्ले तथा रिबो आदि ने आगे बढ़ाया। मेलार्मे का कहना है कि–'वही कविता श्रेष्ठ हो सकती है जो अनुभूति का संकेत मात्र देकर रह जाए, उसका शनैः शनैः उद्घाटन करे। अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यक्ति के अर्थ हैं–कविता के तीन चौथाई सौंदर्य को नष्ट कर देना।'

बिम्बवाद के मूल में भी नए काव्य रूप के अन्वेषण की ही प्रेरणा है। इसके प्रवर्तक ह्यूम माने जाते हैं। इन्होंने विशिष्ट काव्य रूप की चर्चा कर बहुतों को प्रभावित किया। परिणामतः एजरा पाउंड, रिचर्ड, एलडिंग्टन, एप.एस. फ्लिंट आदि इनके अनुयायी हो गए। सन 1914 ई. में एज़रा पाउन्ड के संपादन में 'दि इमैजिस्ट' नाम का एक काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें इन लोगों ने अपने सिद्धांत की मान्यताओं का प्रकाशन किया। कम से कम शब्दों में पूरे चित्र को उतार देना ही इनका आदर्श रहा। इसके लिए शब्द चयन की विशिष्टता पर ये बल देते रहे। क्योंकि सामान्य शब्द की अपनी अर्थवत्ता और चित्रात्मक सांकेतिकता के लिए अद्वितीय बन सकता है। सन् 1909 से लगभग 1930 तक चलने वाले इस आंदोलन का प्रभाव हिंदी कविता में सन् 1940 के बाद दिखाई देता है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार, शमशेर, धर्मवीर भारती आदि साहित्यकार बिम्बवादी इसी विचारधारा से प्रेरित जान पड़ते हैं।

3.4 थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना

इसकी स्थापना मदाम ब्लावत्स्की और कर्नल ओल्टकाट ने न्यूयार्क में सन् 1875 ई. में की। इस सोसाइटी के संस्थापक जनवरी 1879 ई. में भारत आये। 1882 ई. में अडयार (मद्रास) में इसकी शाखा खोली गयी। श्रीमती एनीबेसेन्ट ने 1888 ई. में इस संस्था की इंग्लैंड शाखा से सम्बद्ध हुई और 1893 ई में वे भारत आयी और सोसाइटी के विकास में तन–मन–धन से जुट गयी। इस सोसाइटी का प्रमुख लक्ष्य विश्वबन्धुत्व का प्रचार, आध्यात्मिक जीवन का महत्व समाज सुधार और शिक्षा आदि का प्रचार करना था। वस्तुतः थियोसोफिकल आन्दोलन भारतीय विचारों और परंपरा के अनुकूल ही था। श्रीमति एनीबेसेन्ट ने समस्त भारत का दौरा किया तथा हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक पक्ष पर अनेक ओजस्वी भाषण दिए एवं उन्होंने घोषित किया––मैं अपने विगत के संस्कारों के कारण हृदय से तुम्हारे साथ हूँ।' थियोसोफिकल में उन्होंने अनेक आदर्शों को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु कई शिक्षा संस्थानों की स्थापना की। बनारस का सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज इसी तरह का था। इन संस्थाओं ने भारतवासियों में नवीन प्रेरणा शक्ति, अतीत के प्रति श्रद्धा, भविष्य में विश्वास उत्पन्न करके नई आत्म गौरव की भावना का संचार किया। इस आंदोलन से उदारता और समन्वयवादी दृष्टि का विकास तेज़ी से हुआ। सोसाइटी ने राष्ट्रीयता का पोषण सफलता के साथ किया एवं उसने नयी शिक्षा प्रणाली को भारत के विरूद्ध घोषित किया।

बोध प्रश्न– 2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. आदर्शवाद क्या था? उसकी मुख्य धारणा को पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. अभिव्यंजनावाद और रूपवाद का अंतर स्पष्ट करते हुए उनकी वैचारिक देन पर दस पक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

3. अस्तित्ववाद ने आधुनिक युग के वैचारिक आधार को कैसे समृद्ध किया ? दस पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. मनोविश्लेषणवाद एवं अतियथार्थवाद का स्वरूप क्या है? लगभग दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5. मार्क्सवादी विचारधारा क्या है ? लगभग सात–आठ पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

6. प्रतीकवाद और बिम्बवाद का अंतर पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7. समाजवाद और साम्यवाद के वैचारिक आधार में क्या अंतर है? पाँच–छह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास 1

1) निम्नलिखित के सही उत्तर को (√) चिह्नित कीजिए

i) नीचे कुछ नाम दिए हुए हैं बताइए किस दार्शनिक ने कहा था कि –

'ईश्वर मर गया'– हैडलर, जैसपर्श, नीत्शे, मार्शल

ii) नीचे दिए हुए शब्दों में से बताइये अस्तित्ववाद की दृष्टि में मनुष्य क्या है –

वस्तु, मशीन, क्रियात्मक शक्ति

iii) नीचे कुछ नगरों के नाम दिए हुए हैं बताइए थियोसोफिल सोसाइटी भारत में प्रथम शाखा किस नगर में खोली गई–

बम्बई, कलकत्ता, मद्रास

iv) नीचे लिखे हुए लेखकों के नामों से बताइए कि किसने हमारे 'गरीब किसान और मजदूर' नामक लेख लिखा –

श्रीपाद अमृत डांगे, काजी नज़रुल इस्लाम, जनार्दन भट्ट।

2) 1854 में वुड घोषणा–पत्र द्वारा शिक्षा के लिए क्या किया गया? दो वाक्यों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

3) महात्मा गांधी की मानवतावादी भावना के कितने रूप हैं ? तीन पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

3.5 भारतीय जीवन दृष्टियाँ

अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना से भारत के आर्थिक ढाँचे में बेशुमार परिवर्तन आया। नयी शिक्षा पद्धति लागू हुई। प्रेस और यातायात के साधनों के फलस्वरूप समाज का जो आधुनिकीकरण आरंभ हुआ, वह प्राचीन और मध्यकालीन धार्मिक संस्कारों, रीति–रिवाजों, संगठनों से मेल नहीं खाता था। अतः नये और पुराने संस्कारों के बीच सामंजस्य की आवश्यकता महसूस की गयी एवं इसी सामंजस्य के साथ ही नये समाज निर्माण की प्रक्रिया भारत में शुरू हई। भारतीय नव–जागरण के मूल में व्यक्ति स्वातंत्र्य का विशेष महत्व है। बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज ने परंपरागत धर्म को नये समाज के अनुरूप ढालने के पक्षपाती थे। मध्यकाल का सामंजस्य भावना मूलक था किन्तु आधुनिक काल में भावना से काम नहीं चल सकता था, अब तो भावना के स्थान पर तर्क, विवेक, और बुद्धि से काम लेना अनिवार्य हो गया था। ब्रहम समाज और प्रार्थना समाज की मान्यताएँ कुछ हद तक बुद्धि, विवेक और तर्क पर ही आधारित है।

3.5.1 ब्रह्म समाज

आधुनिक भारत की नींव का पहला पत्थर राजा राममोहन राय ने रखा क्योंकि विदेश यात्रा ने उन्हें नया दृष्टिकोण दिया था। उन्होंने भारतीय समाज के आधुनिकीकरण के लिए 20 अगस्त 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना की। हिन्दू धर्म की गूढ़ता को भली–भांति समझने के लिए उन्होंने बनारस जाकर कुछ वर्षों तक गीता, उपनिषद आदि का गहन अध्ययन किया। अरबी–फारसी का उन्हें अच्छा ज्ञान था, इन भाषाओं के माध्यम से अफलातून, अरस्तू, प्लाटीनस आदि यूनानी विचारकों का अध्ययन किया। यही कारण है कि उनकी विचारधारा पर इस्लामी ऐकेश्वरवाद के प्रभाव की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती

है तथा इसाई धर्म से भी वे प्रभावित थे। उन्हें ये समस्त विचारधारायें प्राचीन औपनिषदिक दर्शन में मिली–विशेष रूप से तैतिरीय और कोषातकी में। उन्होंने कर्मकांड और अंधविश्वासों पर कुठाराघात करने के लिए बड़ी सफलता से उपनिषदों का प्रयोग किया। मूर्ति पूजा को उन्होंने धर्म का बाह्याडंबर घोषित किया तथा उसके समर्थन में जितने तर्क दिए जाते थे उनका खंडन उपनिषदों के आधार पर किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि परंपरा का प्राचीनतम रूप शुद्ध ब्रह्म की उपासना है न कि मूर्ति–पूजा।

तत्कालीन समाज में राजा राममोहन राय अकेले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अंधविश्वासों और रुढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठाई एवं उनको समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। उनकी विचारधारा में तर्क की ऐसी प्रधानता थी जो लॉक, ह्यूम और रूसो से मेल खाती थी। उनका मत था कि मनुष्य को स्वयं दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन करके उनके सिद्धांतों को तर्क की कसौटी पर कसना चाहिए और जो अंश तर्कोनुमोदित न हो उन्हें अवश्य ही अस्वीकार कर देना चाहिए।

धार्मिक सुधार और समाजिक सुधार में घनिष्ठ संबंध है। राजा राममोहन राय इसे अच्छी तरह समझते थे इसी कारण उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर करारा प्रहार किया। उन्होंने जाति प्रथा को अमानवीय और राष्ट्रीयता का विरोधी घोषित किया। बलि प्रथा, सती प्रथा के विरोध में जो उन्होंने प्रयास किया, उसका भारतीय समाज सदैव ऋणी रहेगा। केवल इतना ही नहीं उन्होंने विधवा–विवाह और स्त्री–पुरुष के समानाधिकार का समर्थन दृढ़ता के साथ किया।

भारत की शिक्षा प्रणाली के परिवर्तन को उन्होंने भारतीय समाज के हित में समझा। यही कारण है कि उन्होंने अंग्रेजों की शिक्षा प्रणाली के प्रचार–प्रसार का समर्थन ही नहीं किया बल्कि उचित योग भी दिया। वस्तुतः 19वीं शती के पूर्वार्द्ध तक अंग्रेजों ने जो कुछ किया, वह ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील कहा जा सकता है। पाश्चात्य संस्कृति को स्वीकार करते हुए भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

ब्रह्म समाज की बौद्धिक अनुभूति, विशुद्ध अध्यात्मवाद और समाज सेवा के कारण लोग आकृष्ट हुए। ब्रह्म समाज को आगे बढ़ाने में देवेन्द्रनाथ टैगोर (1819–1905) और केशवचन्द्र सेन (1838–84) का भी अपना विशेष योगदान रहा है। देवेन्द्रनाथ टैगोर को वेदों की अपौरुषेयता पर विश्वास नहीं था। और उनकी आस्था अन्तःप्रज्ञा पर अधिक थी। केशवचन्द्र सेन बहुत कुछ प्रयोगवाद के समर्थक रहे हैं। ब्रह्म धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने दूर–दूर की यात्राएँ की और उन्हीं की प्रेरणा से मद्रास में वेद समाज और बम्बई में प्रार्थना समाज की भी स्थापना हुई। ब्रह्म समाज में केशवचन्द्र सेन के पश्चात् कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जो शिक्षित समाज को प्रभावित कर पाता।

3.5.2 प्रार्थना समाज

इस समाज के उन्नायक 19वीं शताब्दी के चोटी के बुद्धिजीवी, विधिवेत्ता और मेधावी व्यक्ति महादेव गोविन्द रानाडे थे। उन्हीं के प्रभाव से 1867 ई. में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। रानाडे ने चालीस वर्षों तक सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया। वे संकीर्ण विचारधारा को कभी भी प्रश्रय नहीं देते थे। देश और समाज की कोई भी ऐसी समस्या नहीं थी, जिसकी ओर उनका ध्यान न गया हो। वे प्रगति और विकास के पक्षपाती थे। ईश्वर को सार्वभौम और स्रष्टा मानते थे एवं आत्मा की अमरता में उन्हें पूर्ण विश्वास था। वे रामानुजाचार्य के द्वैतवाद के समर्थक और शंकराचार्य के अद्वैतवादी के कट्टर विरोधी थे किन्तु वे प्रतिक्रियावादी कभी नहीं थे और न ही उनमें किसी प्रकार का पूर्वाग्रह ही था।

रानाडे के मन में अतीत के प्रति आदर था किन्तु उसे उसी रूप में प्रतिष्ठित करना उन्हें कतई स्वीकार न था। वे मृत को मृत मानकर चलने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मृत अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता क्योंकि समाज जीवित अवयवों का संघटन है। समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है और चलती रहेगी तथा उसे चलती रहना भी चाहिए अन्यथा समाज मुर्दा हो जायेगा।

रानाडे मनुष्य की समानता के पक्षधर थे और उन्होंने जाति–पाति के विरोध में अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया तथा स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। यद्यपि वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे लेकिन उन्होंने उसे आँख मूंद कर नहीं स्वीकारा बल्कि जो कुछ स्वीकारा उस पर तर्क–वितर्क करके ही स्वीकारा। अस्तु वे भारतीय समाज को नवीन वैज्ञानिक प्रणाली के अनुरूप ढालने का प्रयास आजीवन करते रहे।

3.5.3 रामकृष्ण परमहंस मिशन

इसकी स्थापना विवेकानन्द ने की। वे रामकृष्ण परमहंस के योग्य और होनहार शिष्य थे। रामकृष्ण परमहंस अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परमहंस थे। परमहंस के संबंध में कहा जाता है–इस गरीब, अनपढ़, गंवार, रोगी, अर्धमूर्तिपूजक, मित्रहीन हिन्द भक्त ने बंगाल को बुरी तरह हिला दिया। विवेकानन्द ने उन्हें बाहर से भक्त और अन्दर से ज्ञानी कहा है। परमहंस ने सभी धर्मों को ईश्वर के पास पहुँचाने का विविध मार्ग माना और ईश्वर की अलौकिक सत्ता में विश्वास व्यक्त करके आध्यात्मिक जीवन बिताने की प्रेरणा दी। उन्होंने भी तुलसीदास की भांति निर्गुण–सगुण, द्वैत–अद्वैत, मूर्त–अमूर्त, पौरस्त्य–पाश्चात्य आदि सभी तत्वों में समन्वय स्थापित किया। उनके मन में माता, भक्त, भगवान साकार ब्रह्मोपासक, निराकार, ब्रह्मोपासक सभी के प्रति आदर की भावना विद्यमान थी। स्वामी विवेकानन्द का मुख्य प्रयोजन रामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार करना था। किन्तु सामाजिक कार्यों में उनकी गहरी रुचि थी। मानवीय समता के विश्वासी होने के कारण उन्होंने जाति सम्प्रदाय, छुआछूत आदि का विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति प्रगाढ़ थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा–'पूजा के सभी उपकरणों को फेंक दो–शंख, घंटा–घड़ियाल, दीप को प्रतिभा के सम्मुख डाल दो–वैयक्तिक मुक्ति के लिए की गयी साधना, शास्त्रों के अध्ययन का अहंकार छोड़ दो। गाँव–गाँव जाओ और गरीबों की सेवा में अपने आप को निछावर कर दो।' शिक्षितों और उच्च वर्ग को सम्बोधित करके कहा–'जब तक देश में हजारों लोग अज्ञानी और भूखे हैं तो मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज कहूँगा। गरीबों के पैसे से पढ़कर भी वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। भारत को केवल जनता से आशा करनी चाहिए। उच्च वर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मर चुका है। धर्म वह है जो शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति दे, जो आत्म–सम्मान और राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहायता करे। धर्मगत ध्यान यदि व्यक्ति को प्रमादी और निष्क्रिय बनाता है तो उसे त्याग देना चाहिए। तुम्हारे राम–कृष्ण की चिन्ता कौन करता है? तुम्हारी भक्ति और मुक्ति को कौन देखता है? तम्हारे धर्म–ग्रंथों की प्रवाह कौन करता है?.....यदि मैं अपने देशवासियों को कर्म योग में दीक्षित कर सकूँ और उसके लिए मुझे हजारों बार नरक में जाना पड़े तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।'

स्वामी विवेकानन्द ने भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता, आध्यात्मिक चिन्तन की ऊँचाई को, हीन भावना से ग्रस्त भारतवासियों के सम्मुख रखा और आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य की समता, एकता, बन्धुत्व और स्वतंत्रता की ओर ध्यान आकृष्ट किया तो पश्चिम की भौतिकता से चमत्कृत भारतीयों को पहली बार एहसास हुआ कि हमारी अपनी परंपरा में भी कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें हम विश्व के सम्मुख गौरव के साथ रख सकते हैं।

3.5.4 आर्य समाज

1867 ई. में दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। वे असाधारण व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे और संस्कृत के विद्वान, वाग्मी तथा अत्यन्त मेधावी थे। आर्य समाज के लिए उन्होंने वेदों को आधार बनाया। उनका मत है वेद शाश्वत और अपौरुषेय हैं, वैदिक धर्म ही सत्य और सार्वभौम है तथा दूसरे धर्म अधुरे हैं। अतः आर्य समाज का कर्तव्य है कि अन्य धर्मावलम्बियों को हिन्दू धर्म में ही दीक्षित करें।

सामाजिक और नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर आर्य समाज ने एक आचार संहिता तैयार की। इस आचार संहिता के अनुसार जाति–भेद का विरोध, मनुष्य–मनुष्य की समानता का समर्थन, स्त्री–पुरुष की असमानता का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन और बाल विवाह का विरोध किया गया।

दयानन्द सरस्वती जी ने अनेकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा, बहु–विवाह, ब्राह्मण धर्मान्तगर्त कर्मकांड का विरोध किया तथा एकेश्वर की आराधना की प्रेरणा दी। अपने 'सत्य प्रकाश' में स्वधर्म, स्वभाषा और स्वदेश प्रेम का नारा लगाकर धर्म और राष्ट्र का अटूट सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। भारतीय समाज को एकसूत्र में बांधने के लिए उन्होंने विविध राष्ट्र मूलक सुधारों का प्रचार एवं प्रसार किया और पुरानी रूढ़ियों से बचाने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने प्राणों की निन्दा की, इस्लाम और इसाई धर्म का विरोध किया। आर्य समाज जहाँ एक ओर प्रगतिशील था वहीं दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी भी। जहाँ तक मानवीय समता, अस्पृश्यता आदि का सम्बन्ध है, इसे प्रगतिशील कहा जा सकता है किन्तु मुसलमानों के प्रति जो इसका आक्रामक रुख था वह प्रतिगामी प्रकृति का सूचक है। यद्यपि दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म के व्याख्याता थे फिर भी पश्चिमी शिक्षा प्रणाली के समर्थक थे क्योंकि उन्हें मालूम था कि भौतिक उन्नति के लिए पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान की जिला अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण था कि उन्होंने 1886 ई. में दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज की स्थापना की। अपने हिन्दूवादी दृष्टिकोण के बावजूद आर्य समाज ने राष्ट्रीय विचारधारा को आगे बढ़ाने में आश्चर्यजनक योगदान दिया है। इसका प्रभाव उत्तर भारत के आचार–विचार, रहन–सहन, साहित्य, शिक्षा आदि पर पड़ा। आधुनिक हिंदी साहित्य पर आर्य समाज का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों से व्यापक प्रभाव पड़ा है। यही कारण कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' में दयानन्द सरस्वती की प्रशंसा की है।

इन सबके अतिरिक्त अनेक संस्थाओं और व्यक्तियों ने तत्कालीन समाज, धर्म, और संस्कृति को जन–मानस तक शुद्ध रूप में पहुँचाने का प्रयास किया है। 1861 ई. में आगरा में राधा स्वामी सतसंग की स्थापना शिवदयाल जी ने की। शोषित–पीड़ित मानव की सेवा–शुश्रूषा करना ही इनका भी मुख्य उद्देश्य था।

3.5.5 गांधीवादी विचारधारा

गांधीवादी विचारधारा ने भी आधुनिक युगीन भारतीय विचारधारा को बहुत प्रभावित किया। 'महात्मा गांधी' बीसवीं शताब्दी के अर्ध भाग में भारतवर्ष को नेतृत्व देने वाली एक महान हस्ती का नाम है। गांधी जी की विचारधारा की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनका चिंतन आधुनिक युगीन अधिकांश विचारधाराओं की तरह किसी तर्क प्रणाली पर आधारित न होकर आत्मानुभूति, आध्यात्मिकता तथा आत्मशक्ति पर आधारित है। आचार्य विनोबा भावे का कहना है कि गांधी जी समाज की परंपराओं को परिपक्व एवं विकसित करना चाहते हैं। इसीलिए वे परिश्रम की समानता, होड़ के अभाव तथा आनुवंशिक संस्कारों से लाभ उठाने वाली शिक्षण योजनाओं का प्रस्ताव रखते हैं। सर्वोदय ही उनका सामाजिक आदर्श रहा।

उनके जीवन का आदर्श सत्याग्रह रहा और शासनादर्श राम राज्य रहा। समाज के सभी व्यक्तियों और वर्गों की समान उन्नति ही गांधीवाद का लक्ष्य रहा। सत्य और अहिंसा के स्तम्भों पर गांधी जी राम राज्य के भवन निर्माण का आधार रखना चाहते थे। सत्य ही उनकी दृष्टि में ईश्वर का दूसरा नाम था। सत्य के साक्षात्कार से ही वे समबुद्धि की प्राप्ति मानते हैं। अहिंसा सत्य का दूसरा पक्ष है। प्रेम और वैराग्य के समन्वय से अहिंसा की पृष्ठभूमि बनती है और उसके लिए आत्म शुद्धि आवश्यक है। आत्म शुद्धि से ही आत्मा को शांति भी मिलती है और उसी से समाज का कल्याण संभव है। गांधी जी ने कला के बाह्य विकास के लिए भी आंतरिक विकास पर बल दिया। जो कला आत्मा के प्रदर्शन की शिक्षा नहीं देती वह कला तुच्छ है। सच्ची कला तो वही है जो सत्य की अभिव्यक्ति में सहायक हो ऊर्ध्ववगामिनी प्रकृति में सहायक हो। हिंदी के आधुनिक युगीन साहित्य तथा साहित्यकारों पर भी इस विचारधारा का बहुत प्रभाव पड़ा। गांधी जी का जीवन दर्शन इन साहित्यकारों के सृजन में ढलने लगा। सभी विधाओं में इन्हें देखा जा सकता है। प्रेमचंद, सुदर्शन, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, रामनरेश त्रिपाठी, पंत, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी, भवानी प्रसाद मिश्र आदि अनेक साहित्यकारों पर इनके प्रभाव को देखा जा सकता है।

3.5.6 प्रगतिवाद

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित एवं विख्यात 'प्रगतिवाद' यथार्थवाद की विचार प्रणाली का ही एक विकसित रूप माना जाता है। 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में आरंभ होने वाले इस साहित्यिक आंदोलन ने सन् 1936 में मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का एक अधिवेशन किया। तभी से प्रगतिवाद का प्रचार आलोचनात्मक तथा रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में बहुत बढ़ने लगा। छायावाद के बाद की काव्यधारा 'प्रगतिवाद' के नाम से ही जानी जाती है। प्रगतिवाद का मूल उद्देश्य सामाजिक यथार्थ के आधार पर उस सामाजिक चेतना का जागरण करना था जो छायावाद युग में हासोन्मुख थी। समाज के उपेक्षित वर्गों यथा–कृषक, श्रमिक तथा अछूत वर्गों में सामाजिक चेतना के जागरण ही प्रगतिवादी लेखकों का उद्देश्य रहा। इस विचारधारा के विकास में राहुल सांकृत्यायन, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय राघव, यशपाल तथा रामविलास शर्मा आदि ने पर्याप्त योग दिया। 'प्रगति' से इनका तात्पर्य है जन स्तर पर चेतना जागरण। 1938 और उसके बाद की प्रगतिवादी कृतियों में जिस वर्ग संघर्ष पर मानवतावाद तथा वैयक्तिक उद्घोष का रूप देखने को मिलता है उसकी वैचारिक झलक हमें प्रसाद, निराला तथा महादेवी वर्मा के साहित्य में भी देखने को मिलती है। प्रसाद के 'आँसू' का उत्तरार्द्ध मानव की विषमता और वेदना का द्योतक है। महादेवी की रचनाओं में करुणा का आदर्श प्रेरक मानवतावादी मनोभाव की ही अभिव्यक्ति है। निराला का 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर' तथा 'बादल राग' और पंत की 'युगांत' आदि में प्रगतिवाद की भूमिका को सहज ही देखा जा सकता है।

'भारतीय प्रगतिशील लेखक मंच' की स्थापना सन् 1935 में डॉ. मुल्कराज आनंन्द, सज्जाद ज़हीर तथा भवानी भट्टाचार्य आदि भारतीय लेखकों ने लंदन में की थी और उसकी प्रेरणा सन् 1935 में भारतीय लेखकों ने पेरिस में संस्थापित 'प्रगतिशील लेखकों अंतर्राष्ट्रीय संघ' से मिली थी जिसके प्रथम सभापति अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री ई.एम. फार्स्टर थे। इसके संगठन में मैक्सिम गोर्की का भी हाथ रहा। इसका उद्देश्य था समाजवादी शक्तियों के प्रसार और फासिस्ट विरोधी शक्तियों के प्रसार को रोकना। हिंदी में जैसा कि पहले कहा गया इस प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन प्रेमचंद की अध्यक्षता में सन् 1936 में लखनऊ में हुआ। इसमें समाज के नये रूप के साहित्य में प्रतिबिंबित करने, वैज्ञानिक युक्तिवाद के साहित्य में उतारने तथा प्रगतिशील विचारधारा के गीत देने पर बल दिया गया।

सन् 1938 में कलकत्ता में इस संघ का दूसरा अधिवेशन हुआ। इसमें देश के आर्थिक, सामाजिक और साहित्यिक परिवेश पर प्रकाश डालते हुए लेखकों को उनके प्रति सजग होने की प्रेरणा दी गई। सन् 1942 में संघ का तीसरा अधिवेशन दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन में बढ़ते हुए फासिज्म का विरोध मुख्य मुद्दा रहा। फासिज्म की विजय ने प्रगतिशील विचारों के विकास का मार्ग बंद कर दिया था। इस संघ का चौथा अधिवेशन सन् 1943 में बम्बई में हुआ, जिसकी अध्यक्षता 'डांगे' ने की। इसमें राष्ट्र के मनोबल को सुदृढ़ बनाने के लिए जनता के साहस एवं संकल्प को मजबूती प्रदान करने का उद्देश्य रखा गया। रचनात्मक कार्यों की प्रेरणा इसमें दी गई। संघ का पाँचवा अधिवेशन 1950 में पुनः बंबई में हुआ। इसका संचालन डॉ. राम विलास शर्मा ने किया था। नगर में इस अधिवशेन पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। संघ का अंतिम और छठा अधिवेशन सन् 1953 में दिल्ली में हुआ जिसमें विश्व संघ के स्वरूप को व्यापक बनाने का निश्चय किया गया। अतः प्रगतिशील लेखक संघ ने भी अपने कार्यकाल में भारतीय आधुनिक लेखकों को बहुत प्रभावित किया। इस संघ ने इसी तरह से कई सम्मेलन भी किए। पूरे भारत के अलग–अलग राज्यों में भी प्रगतिशील लेखकों की बैठकें होती रहीं। काशी में भी प्रगतिशील लेखकों के दो महत्वपूर्ण अधिवेशन हुए जिसमें– प्रथम के सभापति अंबिका प्रसाद वाजपेयी थे तथा दूसरे के सभापति थे– नंद दुलारे वाजपेयी जी। प्रथम अधिवेशन में केंद्रीय भाषा अथवा राष्ट्र भाषा के अस्तित्व पर बल दिया गया जबकि दूसरे में प्रगतिशील लेखक संघ को एक साहित्यिक संस्था बताते हुए उसे जातीय संकीर्णता, सांप्रदायिकता और राजनीतिक दलबंदी से दूर रहने पर बल दिया गया।

प्रगतिशील लेखकों के इस सम्मेलनों, विचारों और धारणाओं का प्रभाव हिंदी साहित्य पर व्यापक रूप में पड़ा। छायावादी कवि निराला और पंत के साहित्य में प्रगति के इस स्वर को देखा जा सकता है। 'रुपाभ', 'जागरण' तथा 'हंस' आदि पत्रिकाओं ने भी इसी स्वर को बुलंद किया। 'रुपाभ' का संपादन पंत जी तथा पं. नरेन्द्र शर्मा ने किया। 'जागरण' के संपादकों में आचार्य नरेन्द्र देव, प्रेमचंद तथा सम्पूर्णानंद जी उल्लेखनीय हैं। 'हंस' का संपादन प्रेमचंद जी ने किया। इनके माध्यम से अनेक प्रगतिशील लेखकों को साहित्य क्षेत्र में आने का अवसर मिला।

3.6 वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा आदर्शवादी जीवन–दर्शन

आधुनिक युग की वैचारिक पृष्ठभूमि का एक महत्वपूर्ण पक्ष है–सांस्कृतिक दृष्टि से भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उदय। विज्ञान के नए–नए आविष्कारों ने समाज के विभिन्न वर्गों विश्वास को नष्ट किया। अशिक्षित वर्ग भले ही युगीन अंधविश्वासों की जकड़ से न छूट सका हो किंतु शिक्षित तथा मानसिक रूप से प्रबुद्ध लोगों ने जीवन की सत्यता को स्वीकारा। राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गांधी आदि समाज सुधारकों ने बौद्धिकता के द्वार पर जो दस्तक दी थी उससे नए भारत का भाग्योदय हुआ। समाज के लिए कोड़ बनी घातक सती प्रथा, बाल–विवाह, अस्पृश्यता तथा धार्मिक कर्मकांड जाति के उन्मूलन की प्रेरणा इन लोकनायकों ने दी। अब जनता भाग्य के भरोसे खामोश बैठने के स्थान पर कर्मठता तथा पुरुषार्थ पर भरोसा करने लगी। आदर्श और कल्पना का स्थान अब यथार्थवाद लेने लगा था। मार्क्स, फ्रायड, डार्विन, बरट्रेंट रसल तथा एंगेल्स आदि की विचारधाराओं ने जहाँ एक ओर कर्म में आस्था रखने की राह दिखाई वहीं अनेक पारंपरिक अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी प्रदान किया।

भारतीय जीवन दर्शन में अब श्रद्धा और धर्म के साथ–साथ बौद्धिकता और तर्क का भी समावेश हो गया। ईश्वर के भरोसे सब कुछ छोड़ देने के स्थान पर अब मानव को अपनी

कर्मनिष्ठा एवं शक्ति पर विश्वास होने लगा। प्राकृतिक दुर्घटनाओं से बचने के लिए अब ईश्वर की उपासना ही पर्याप्त न रही, मानव का सामर्थ्य भी अब केंद्र में आ गया। इस युग के साहित्य में इन मूल्यों एवं विचारों को सहज ही देखा जा सकता है। मानवतावादी विचारधारा इस युग के साहित्य में पर्याप्त मात्रा में देखी जा सकती है। साहित्यकारों ने मानव की महानता का वर्णन भी खुलकर साहित्य में किया।

भारतीय चिंतन में परंपरागत आदर्शवादी जीवन–दर्शन को महत्व दिया गया। इनका दृष्टिकोण भावना प्रधान रहा। राष्ट्रीय स्वातंत्र्य–चेतना तथा सांस्कृतिक निष्ठा आदि के इस वैचारिक–आधार को भी साहित्य में अभिव्यक्त होते देखा जा सकता है। उल्लेखनीय विशेषता यह है कि भारतीय आधुनिक युग की वैचारिक पृष्ठभूमि में पाश्चात्य विचारों का बौद्धिक एवं भारतीय विचारों का भावनात्मक मिश्रण मिलता है। यही बुद्धि एवं हृदय का मिश्रण है जिसे आनन्द की प्राप्ति का आदर्श माना जाता है।

बोध प्रश्न– 3

निम्नलिखित प्रश्नो के उत्तर संक्षेप में दें।

1. ब्रह्म समाज की स्थापना किसने और क्यों की थी? लगभग सात–आठ पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

2. प्रार्थना समाज का मूल वैचारिक आधार क्या रहा? सात–आठ पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. 'राम कृष्ण मिशन' की आधुनिक युग के वैचारिक आधार को क्या देन है? दस पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. 'आर्य समाज' की सामाजिक भूमिका क्या है? आठ–दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5. गांधीवादी विचारधारा की विशिष्टता क्या थी और उसने किन–किन साहित्यकारों को प्रभावित किया? पाँच पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6. प्रगतिवाद की 'वैचारिक देन' क्या है? उसने कौन–कौन सी नई धारणाएँ साहित्य और समाज को प्रदान की? दस पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7. i) निम्नलिखित वाक्यों में से एक वाक्य सही है। उसे लिखिए।

   क) केशवचंद सेन प्रयोगवाद के समर्थक थे।

   ख) गोविन्द रानाडे को आत्मा की अमरता पर पूर्ण विश्वास नहीं था।

   ग) स्वामी विवेकानन्द मानव समता के पक्षपाती नहीं थे।

   घ) रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द के शिष्य थे।

ii) निम्नलिखित समाज सुधारकों में से किसे आधुनिक भारत की नींव का प्रथम पत्थर कहा जाता है –

गोविन्द रानाडे, स्थामी विवेकानन्द, दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहनराय।

iii) नीचे कुछ सन् दिए हुए हैं उनमे से बताइए कि प्रार्थना समाज स्थापना कब हुई–

1868 ई., 1867 ई., 1910 ई., 1828 ई.

iv) निम्नलिखित वाक्य किस महान दार्शनिक का है –

'यदि मैं अपने से देशवासियों को कर्मयोग में दीक्षित कर सकूँ और उसके लिए यदि मुझे हज़ारों बार नरक में जाना पड़े, तो मुझे प्रसन्नता होगी।'

3.7 सारांश

- यह बात सच है कि अंग्रेजों ने भारत में नयी अर्थव्यवस्था, औद्योगिकता संचार सुविधा, प्रेस अपने निजी स्वार्थ के लिए स्थापित किया, किन्तु यह इनकार नहीं किया जा सकता कि इससे भारत और भारतवासियों का हित भी था। पूंजीवादी समाज की भौतिकता के कारण धर्म सुधारकों को इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बनने के लिए बाध्य होना पड़ा। उन्हें एक ओर विदेशियों के समक्ष अपने धर्म एवं संस्कृति की वकालत करनी पड़ी तो दूसरी ओर अपने देशवासियों को धर्म का नया अर्थ प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक हो गया। पुराणपंथी और समाज सुधारक दोनों ने अपने–अपने मत का अपने–अपने ढंग से धर्मशास्त्रों का पन्ना पकड़ा। राजाराम मोहनराय को सती प्रथा को उन्मूलित करने के लिए धर्मशास्त्रों की यदि आवश्यकता हुई तो विद्यासागर ने सिद्ध किया कि धर्मशास्त्रों में वैधव्य का कोई विधान नहीं है, एवं दयानन्द सरस्वती को सामाजिक सुधारों को वैध प्रमाणित करने के लिए वेदों की ओर उन्मुख होना पड़ा।
- इस प्रकार परंपरावादी और धर्म सुधारक दोनों भारत के अतीत के गौरव को जागृत करने में सफल हुए तथा भारतवासियों को आत्म–सम्मान का बोध कराया। दोनों ने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का समर्थन किया तथा नई संस्थाओं की स्थापना भी की। एवं पुरानी शिक्षा संस्थाओं के रूप में तत्कालीन आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक ज्ञान–विज्ञान ने मनुष्य को कुछ सीमा तक बुद्धि सम्मत भी बनाया।
- इन वैचारिक आन्दोलनों ने भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और साहित्य में काफी परिवर्तन ला दिया। अब साहित्यकार अपने चारों ओर के जीवन में, परिस्थिति से, इतना अधिक और इतने प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित हुआ कि इससे पूर्व कभी न हुआ था।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बीसवीं शताब्दी– हिन्दी साहित्य : नए संदर्भ– डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिंदी साहित्य भवन, प्रा. लि., इलाहाबाद।

आधुनिक साहित्य की भूमिका : डा. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव– डॉ. श्रीकृष्ण पुरोहित, उमा प्रकाशन, उदयपुर।

यथार्थवाद– डॉ. शिवकुमार मिश्र, प्रकाशन–दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

हिंदी का आधुनिक साहित्य– डॉ. सत्यकाम वर्मा, प्रकाशन–भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली

हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ– डॉ. जयकिशन प्रसाद, प्रकाशन–विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

हिंदी कवियों में मार्क्सवादी चेतना– डॉ. जनेश्वर वर्मा, प्रकाशन–ग्रंथम कानपुर।

आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह, प्रकाशन–लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3.9 बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) देखिए, भाग 3.2.1

   ii) देखिए, 3.2.2

2) देखिए, 3.2.3

3) देखिए, 3.2.4

4) अ–2, ब–3, स–1

बोध प्रश्न 2

1) देखिए, भाग 3.3.2

2) देखिए, भाग 3.3.2

3) देखिए, भाग 3.3.3

4) देखिए, भाग 3.3.4

5) देखिए, भाग 3.3.6

6) देखिए, भाग 3.3.8

7) देखिए, भाग 3.3.7

बोध प्रश्न 3

1) देखिए, भाग 3.5.1

2) देखिए, भाग 3.5.2

3) देखिए, भाग 3.5.3.

4) देखिए, भाग 3.5.4

5) देखिए, भाग 3.5.5

6) देखिए, भाग 3.5.6

7) क) वाक्य संख्या–3

ख) राजा राममोहन राय

ग) 1867 ई.

घ) स्वामी विवेकानंद

अभ्यास 1

1) i) नीत्शे

ii) क्रियात्मक शक्ति

iii) मद्रास

iv) जनार्दन भट्ट

2) i) जन–समूह को शिक्षित करने के लिए प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया।

ii) उच्च शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई।

3) महात्मा गांधी की मानवतावादी भावना के प्रमुख रूप हैं

अहिंसा, सत्याग्रह, अछूतोद्धार, हिंदू–मुस्लिम एक्य, आर्थिक समन्वय, ग्रामोद्धार और जमींदारी–विरोध।